शब्दाद्वैतवाद : जैन दृष्टि

डॉ० लालचन्द जैन

शब्दाद्वैत भारतीय-दर्शन का महत्वपूर्ण अद्वैत-सिद्धान्त है। इसके पोषक व्याकरणाचार्य 'भर्तृहरि' हैं। वैयाकरणों के दार्शनिक सिद्धान्त शैव-सिद्धान्त के अन्तर्गत आते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि शैव दार्शनिकों का एक सम्प्रदाय व्याकरण-दर्शन का अनुयायी है, जिसका प्रमुख सिद्धान्त शब्दाद्वैत है। इस सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन छठी शती के विद्वान् भर्तृहरि के 'वाक्यपदीय' नामक ग्रन्थ में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त विभिन्न भारतीय दार्शनिक-ग्रन्थों[1] में भी इसका पूर्वपक्ष के रूप में उल्लेख किया गया है।

ब्रह्माद्वैतवाद की तरह शब्दाद्वैतवाद में भी बाह्य पदार्थों की वास्तविक सत्ता मान्य नहीं है। शब्दाद्वैतवाद का अर्थ है—ऐसा सिद्धान्त जो यह मानता हो कि शब्द ही परमतत्व एवं सत्य है। यह दृश्यमान् समस्त जगत् इसी का विवर्तमात्र है। इसी परमतत्व रूप शब्द को उन्होंने ब्रह्म कहा। अतः इनका सिद्धान्त शब्दब्रह्माद्वैतवाद के नाम से प्रसिद्ध है।

वाक् के भेद एवं स्वरूप

भर्तृहरि ने अपने सिद्धान्तों का विवेचन करते हुए वाक् के तीन भेद बतलाये हैं[2]—वैखरी, मध्यमा और पश्यन्ती। विद्यानन्द के अनुसार नागेश आदि नव्य-वैयाकरणों ने वाक् के चार प्रकार माने हैं—वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और सूक्ष्मा।[3] भर्तृहरि ने पश्यन्ती का वही स्वरूप बतलाया है, जो नव्य-वैयाकरणों ने सूक्ष्मा का बतलाया है। इन भेदों का स्वरूप भी शब्दाद्वैतवादियों ने प्रतिपादित किया है।[4]

वैखरी— मनुष्य, जानवर आदि बोलने वाले के कंठ, तालु आदि स्थानों में प्राणवायु के फैलने से ककारादि वर्णों को व्यक्त करने वाली स्थूल वाणी वैखरीवाक् कहलाती है। इस कथन से स्पष्ट है कि वैखरी का सम्बन्ध हर प्रकार की व्यक्त ध्वनियों के साथ है।[5]

---

१. (क) भट्टजयन्त : न्यायमञ्जरी, पृ० ५३२
(ख) कमलशील : तत्वसंग्रहपञ्जिका, ५, कारिका १२८, पृ० ८५-८६
(ग) स्वामी विद्यानन्द : तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, अध्याय १, तृतीय आह्निक, सूत्र २०, पृ० २४०
(घ) अभयदेव सूरि : सन्मतितर्कप्रकरणटीका, तृतीय विभाग, गा० ६, पृ० ३७९-३८०
(ङ) आ० प्रभाचन्द्र : न्यायकुमुदचन्द्र, १/५, पृ० १३९-१४२
(च) वही : प्रमेयकमलमार्त्तण्ड, १/३, पृ० ३९
(छ) वादिदेव सूरि : स्याद्वादरत्नाकर, १/७, पृ० ८८-९८
(ज) यशोविजय : शास्त्रवार्तासमुच्चयटीका, पृ० ३८०

२. 'वैखर्या मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चैतद्भुतम् ।
अनेकतीर्थभेदायास्त्रय्या वाचः परं पदम् ॥', भर्तृहरि : वाक्यदीय, १/१४४

३. 'चतुर्विधा हि वाग्वैखरी-मध्यमा-पश्यन्ती-सूक्ष्माचेति ।', विद्यानन्द : श्लोकवार्तिक, अध्याय १, आ० ३, पृ० २४०
और भी देखें—उपाध्याय, बलदेव : भारतीयदर्शन, पृ० ६४९

४. 'वैखरी-शब्दनिष्पत्तौ मध्यमाश्रुतिगोचरा ।
द्योतितार्था च पश्यन्ती-सूक्ष्मा-वागनपायिनी ॥', कुमारसम्भवटीका, उद्धृत प्र० क० मा०, पृ० ४२

५. 'स्थानेषु विवृते वायौ कृतवर्णपरिग्रहा ।
वैखरी-वाक्-प्रयोक्तृणां प्राणवृत्तिनिबन्धना ॥'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मध्यमा—यह वैखरी की अपेक्षा सूक्ष्म होती है। इसका व्यापार अन्तरंग होता है। प्राणवायु का अतिक्रमण कर अन्तरंगजल्परूप जो वाक् है, वह मध्यमावाक् कहलाती है। मध्यमा वाणी उस अवस्था में होती है, जब वक्ता के शब्द बोलने के पहले भीतर ही होते हैं।[1] चिन्तन करना मध्यमा का कार्य है। श्रुत में प्रविष्ट होकर उसका विषय बनने वाली वाक् मध्यमावाक् का स्वरूप है।

पश्यन्ती—यह मध्यमा से सूक्ष्म होती है। भर्तृहरि ने पश्यन्ती को सूक्ष्मतम बतलाया है। उन्होंने कहा है कि पश्यन्ती वर्ण, पद आदि क्रम से रहित (प्रतिसंहृत), अविभागरूप, चला (क्योंकि शब्दाभिव्यक्ति में गति है), अचला (क्योंकि अपने विशुद्धरूप में निःस्पंद रहती है), स्वप्रकाश तथा संविद्रूप होती है।[2] भर्तृहरि ने इसे परब्रह्मस्वरूपिणी कहा है। यह अक्षर, शब्द, ब्रह्म और परावाक् भी कहलाती है।

पश्यन्ती में वाच्य-वाचक का विभाग प्रतीत नहीं होता। इसके अनेक भेद होते हैं, जैसे-परिच्छिन्नार्थप्रत्यवभास, संसृष्टार्थप्रत्यवभास और प्रशान्तसर्वार्थप्रत्यवभास।[3]

सूक्ष्मा (परावाक्)—नागेश आदि नव्य-वैयाकरणों ने सूक्ष्मा को ज्योतिस्वरूपा, शाश्वती, व्यापका, दुर्लक्ष्या और काल के भेद से स्पर्शरहित बतलाया है।[4] यह सबके अन्तरंग में प्रकाशित होती है। सूक्ष्मवाणी में सम्पूर्ण जगत् व्याप्त होने से संसार शब्दमय कहलाता है। सूक्ष्मा सम्पूर्ण ज्ञानों में व्याप्त रहती है। इसके बिना पश्यन्ती नही हो सकती, पश्यन्ती के बिना मध्यमा और मध्यमा के बिना वैखरी वाणी नहीं हो सकती। इसलिए सूक्ष्मा सभी वाणियों की आद्य-जननी कहलाती है।[5] सम्पूर्ण संसार इसी का विवर्तमात्र है।

शब्दब्रह्म का स्वरूप

भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में शब्दब्रह्म का स्वरूप प्रतिपादित करते हुए निम्नांकित विशेषण दिये हैं[6]—

(क) शब्दब्रह्म अनादिनिधन है—शब्दब्रह्म की पहली विशेषता यह है कि वह उत्पत्ति और विनाश से रहित है। जिसकी न कभी उत्पत्ति होती है और न विनाश, वह अनादिनिधन कहलाता है। शब्दब्रह्म उत्पत्ति एवं विनाश रहित है। इसलिए उसे अनादिनिधन कहा गया है।

(ख) शब्दब्रह्म अक्षररूप है—शब्दब्रह्म अक्षररूप है, क्योंकि उसका क्षरण अर्थात् विनाश नहीं होता। दूसरे शब्दों में शब्दब्रह्म कूटस्थ नित्य है। दूसरी बात यह है कि अकारादि अक्षर कहलाते हैं। शब्दब्रह्म इन अकारादि अक्षरों का निमित्त-कारण है, इसलिए वह अक्षर-रूप कहा गया है। अकारादि अक्षरों की उत्पत्ति शब्दब्रह्म के बिना नहीं हो सकती। शब्दब्रह्म के अक्षररूप से यह भी सिद्ध होता है कि वह वाचकरूप है।

(ग) शब्दब्रह्म अर्थरूप से परिणमन करता है—शब्दाद्वैतवादियों ने शब्दब्रह्म का स्वरूप बताते हुए यह भी कहा है कि वह अर्थरूप से विवर्तित होता है। अर्थात्, घट-पटादि जितने भी पदार्थ हैं, वे सब उसी शब्दब्रह्म की पर्याय हैं। घटादि पदार्थों का कारण शब्द-ब्रह्म है, जो घटादि रूप से प्रतीत होने लगता है। इससे सिद्ध है कि शब्दब्रह्म 'वाच्य' भी है।

(घ) शब्दब्रह्म जगत् की प्रक्रिया है—घट-पटादि भेद-प्रभेद रूप जो यह दृश्यमान् जगत् है, वह शब्दब्रह्ममय है। अर्थात्, शब्द-ब्रह्म से भिन्न जगत् की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। क्योंकि, सम्पूर्ण पदार्थ शब्दब्रह्म से उत्पन्न हुए हैं।

---

१. 'प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमा-वाक् प्रवर्तते।'

२. 'अविभागाऽनुगा तु पश्यन्ती सर्वतः संहृतक्रमा'
और भी द्रष्टव्य, स्या० र०, पृ० ६०

३. 'संविच्च पश्यन्तीरूपा परावाक् शब्दब्रह्ममयीति ब्रह्मतत्त्वं शब्दात् पारमार्थिकान्न भिद्यते, विवर्तदशायां तु वैखर्यात्मनाभेदः।',
हेलाराज : वाक्यपदीप, ३/११, उद्धृत बलदेव उपाध्याय, भा० द०, पृ० ६४०

४. 'स्वरूपज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मा-वागनपायिनी।
तया व्याप्तं जगत्सर्वं ततः शब्दात्मकं जगत्॥'
और भी देखें : स्या० र०, पृ० ६०

५. तत्वार्थश्लोकबार्तिक, १/३, श्लोक ९३-९४, पृ० २४०

६. (क) 'अनादिनिधनं ब्रह्मशब्दतत्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रियाजगतो यतः॥', भर्तृहरि : विाक्यपदीय, १/१
(ख) प्रभाचन्द्र : प्र० क० मा०, १/३, पृ० ३९
(ग) वादिदेव सूरि : स्याद्वादरत्नाकर, १/७, पृ० ९०
(घ) 'नाशोत्पादासमालीढं ब्रह्मशब्दमयं परम्।
यत्तस्य परिणामोऽयं भावग्रामः प्रतीयते॥', शान्तरक्षित : तत्त्वसंग्रह, का० १२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्त जगत् शब्दब्रह्ममय है—शब्दाद्वैतवादियों ने इस सम्पूर्ण विश्व को ब्रह्ममय बतलाया है, क्योंकि विश्व उसका विवर्त है। संसार के सभी पदार्थ शब्दाकारयुक्त हैं, यह प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है। ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जो शब्दाकारयुक्त न हो।[1]

दूसरी बात यह है कि जो जिस आकार से अनुस्यूत होते हैं, वे तद्रूप होते हैं। जैसे घट, सकोरा, दीया आदि मिट्टी के आकार से अनुगत होने के कारण मिट्टी रूप ही होते हैं। संसार के सभी पदार्थ शब्दाकार से अनुस्यूत हैं, अतः सम्पूर्ण जगत् शब्दमय है। इस प्रकार अनुमान प्रमाण से शब्दाद्वैतवादी जगत् को शब्दब्रह्ममय सिद्ध करते हैं।[2]

केवलान्वयी अनुमान के अतिरिक्त केवलव्यतिरेकी अनुमान के द्वारा भी उन्होंने जगत् को शब्दब्रह्ममय सिद्ध किया है।[3] यथा—अर्थ शब्द से भिन्न नहीं हैं, क्योंकि वे प्रतीति अर्थात् ज्ञान में प्रतीत होते हैं। जो प्रतीति में प्रतीत होते हैं, वे उससे भिन्न नहीं होते, जैसे—शब्द का स्वरूप। अर्थ की प्रतीति भी शब्द-ज्ञान के होने पर होती है। इसलिए अर्थ शब्दब्रह्म से भिन्न नहीं है। इस प्रकार प्रत्यक्ष-प्रमाण से शब्दब्रह्म की सिद्धि होती है।

ज्ञान भी शब्द के बिना नहीं होता—समस्त जगत् को शब्दब्रह्मरूप सिद्ध करने के बाद शब्दाद्वैतवादी कहते हैं कि संसार के सभी ज्ञान शब्दब्रह्म रूप हैं। उनका तर्क है कि समस्त ज्ञानों की सविकल्पकता का कारण भी यही है कि वे शब्दानुविद्ध अर्थात् शब्द के साथ अभिन्न रूप से संलग्न हैं। ज्ञानों की वाग्रूपता शब्दानुविद्धत्व (शब्द से तादात्म्य सम्बन्ध) के कारण है।[4] शब्दानुविद्धत्व के बिना उनमें प्रकाशरूपता ही नहीं बनेगी। तात्पर्य यह है कि ज्ञान शब्दसंस्पर्शरूप है, इसलिए वे सविकल्प और प्रकाशरूप हैं। यदि ज्ञान को शब्द-संस्पर्श से रहित माना जाय तो वे न तो सविकल्प (निश्चयात्मक) हो सकेंगे और न प्रकाशरूप।[5] फलतः न तो ज्ञान वस्तुओं को प्रकाशित कर सकेगा और न उनका निश्चय कर सकेगा।

अतः ज्ञान में जो वाग्रूपता है, वह नित्या (शाश्वती) और प्रकाश-हेतुरूपा है। ऐसी वाग्रूपता के अभाव में ज्ञानों का और कोई रूप अर्थात् स्वभाव शेष नहीं रहता। यह जितना भी वाच्य-वाचक तत्व है, वह सब शब्दरूप ब्रह्म का ही विवर्त अर्थात् पर्याय है। वह न तो किसी का विवर्त है और न कोई स्वतन्त्र पदार्थ है।

शब्दब्रह्माद्वैतवाद की समीक्षा

भारतीय चिन्तकों ने शब्दब्रह्माद्वैतवाद पर सूक्ष्म रूप से चिन्तन कर उसका निराकरण किया है। प्रसिद्ध नैयायिक जयन्तभट्ट,[6] बौद्ध दार्शनिक शान्तरक्षित और उसके टीकाकर कमलशील,[7] प्रमुख मीमांसक कुमारिल भट्ट की कृतियों[8] में विशेषरूप से शब्दाद्वैतवाद का निराकरण विविध तर्कों द्वारा किया गया है। जैन दर्शन के अनेक आचार्यों ने इस सिद्धान्त में विविध दोष दिखाकर उसकी तार्किक मीमांसा की है। इनमें वि० ९वीं शती के आचार्य विद्यानन्द,[9] वि० ११वीं शती के आचार्य अभयदेव सूरि,[10] वि० ११-१२वीं शती के प्रखर जैनतार्किक प्रभाचन्द्र,[11] वि० १२वीं शती के जैन नैयायिक वादिदेव सूरि[12] और वि० १८वीं शती के जैन नव्यशैली के प्रतिपादक यशोविजय[13] का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन सभी के आधार पर इस सिद्धान्त का निराकरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

शब्द-ब्रह्म की सत्ता साधक प्रमाण नहीं है

शब्दाद्वैतवादियों ने शब्दब्रह्म का जो स्वरूप प्रतिपादित किया है, वह तर्क की कसौटी पर सिद्ध नहीं होता। क्योंकि, शब्दाद्वैत-

---

१. प्रभाचन्द्र : न्यायकुमुदचन्द्र, १/५, पृ० १८९
२. वही
३. वही, पृ० १४१-१४२
४. वही, पृ० १४०; प्रभाचन्द्र : प्र० क० मा०, १/३, पृ० ३९
५. 'शब्दसम्पर्कपरित्यागे हि प्रत्ययानां प्रकाशरूपताया एवाभावप्रसक्तिः।', स्याद्वादरत्नाकर, १/७, पृ० ८८-८९
६. न्यायमञ्जरी, पृ० ५३१
७. तत्वसंग्रह, कारिका १२९-१५२, पृ० ८६-९६
८. मीमांसाश्लोकवार्तिक, प्रत्यक्ष सूत्र, श्लोक १७६
९. तत्वार्थश्लोकवार्तिक, अध्याय १. तृतीय आह्निक, सूत्र २०, पृ० २४०-२४१, श्लोक ८४-१०३
१०. सन्मतितर्कप्रकरणटीका, पृ० ३८४-३८६
११. (क) न्यायकुमुदचन्द्र, १/५, पृ० १४२-१४७
(ख) प्रमेयकमलमार्तण्ड, १/३, पृ० ३९-४६
१२. स्याद्वादरत्नाकर, १/७, पृ० ९२-१०२
१३. शास्त्रवार्तासमुच्चयटीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वादियों ने उसे एक परमतत्व माना है। जैनतर्कशास्त्रियों का मत है कि 'शब्द' प्रमेय है, और प्रमेय के अस्तित्व की सिद्धि प्रमाण के अधीन होती है।[1] आचार्य विद्यानन्द, अभयदेव सूरि, प्रभाचन्द्र, वादिदेव सूरि आदि जैनतर्कशास्त्रियों का कथन है कि यदि शब्दब्रह्मसाधक कोई प्रमाण होता है, तो उसकी सत्ता मानना ठीक था, लेकिन कोई भी प्रमाण ऐसा नहीं है, जिसके द्वारा उसकी सत्ता सिद्ध होती हो। अतः प्रमाण के अभाव में शब्दब्रह्म की सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती।[2] आचार्य विद्यानन्द आदि जैनन्यायशास्त्रियों का तर्क है कि यदि शब्दब्रह्म-साधक कोई प्रमाण है, तो प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम इन तीन प्रमाणों में से कोई एक हो सकता है।[3] शब्दब्रह्माद्वैतवादियों से वे प्रश्न करते हैं कि वे उपर्युक्त तीन प्रमाणों में से किस प्रमाण से शब्दब्रह्म का अस्तित्व सिद्ध करते हैं। इन आचार्यों ने इसकी विस्तार से समीक्षा की है।

शब्दब्रह्म के अस्तित्व का निराकरण करते हुए तत्वसंग्रहकार शान्तरक्षित की भांति जैन दार्शनिक आ० विद्यानन्द, अभयदेव सूरि, प्रभाचन्द्र और वादिदेव सूरि कहते हैं कि प्रत्यक्ष-प्रमाण शब्दब्रह्म का साधक नहीं है। प्रभाचन्द्राचार्य और वादिदेवसूरि शब्दाद्वैतवादियों से प्रश्न करते हैं कि यदि वे प्रत्यक्ष-प्रमाण को शब्दब्रह्म का साधक मानते हैं, तो यह बतलाना होगा कि निम्नांकित प्रत्यक्ष में से किस प्रत्यक्ष से उसका अस्तित्व सिद्ध होता है[4]—

(क) इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष से ? अथवा
(ख) अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष से ? अथवा
(ग) स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से ?

(क) इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष शब्दब्रह्म का साधक नहीं है

आचार्य विद्यानन्द तत्वार्थश्लोकवार्तिक में कहते हैं कि इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष-प्रमाण से शब्दब्रह्म की सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती, क्योंकि शब्दाद्वैतवादियों ने इन्द्रिय प्रत्यक्ष को स्वप्नादि अवस्था में होने वाले प्रत्यक्ष की भांति मिथ्या माना है।[5] अतः इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमेय रूप सम्यक् शब्द का साधक कैसे हो सकता है ? इस प्रकार सिद्ध है कि इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष शब्दब्रह्म का साधक नहीं है। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि शब्दाद्वैतवादियों ने शब्दब्रह्म का जैसा स्वरूप प्रतिपादित किया है, वैसा किसी को इन्द्रिय प्रत्यक्ष-प्रमाण से प्रतीत नहीं होता। सन्मतितर्कप्रकरणटीका[6] में अभयदेवसूरि और प्रमेयकमलमार्तण्ड[7] में प्रभाचन्द्र कहते हैं कि इन्द्रियां वर्तमानकालवर्ती, सम्मुखस्थित मूर्तिक (स्थूल) पदार्थों को ही जानती हैं। इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष सूक्ष्म शब्दब्रह्म का साधक नहीं हो सकता। यदि इन्द्रिय प्रत्यक्ष उसका साधक होता तो आज भी उसकी प्रतीति सभी को होनी चाहिए थी, लेकिन किसी को इसकी प्रतीति नहीं होती। अतः सिद्ध है कि इन्द्रिय प्रत्यक्ष शब्दब्रह्म का साधक नहीं है।

शब्दब्रह्म का सद्भाव किस इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष से होता है : इन्द्रिय प्रत्यक्ष को उसका साधक मानने पर प्रभाचन्द्र और वादिदेवसूरि एक यह भी प्रश्न शब्दाद्वैतवादियों से पूछ ते हैं कि स्पर्शनादि पांच इन्द्रियों में से किस इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष से शब्दब्रह्म का सद्भाव प्रतीत

---

१. 'प्रमाणाधीना हि प्रमेयव्यवस्था ।', अभयदेवसूरि : सन्मतितर्कप्रकरणटीका, पृ० ३८४
२. (क) 'न चैवंभूतब्रह्मसिद्धये प्रमाणमुपलभ्यते…।', वही, तृतीय विभाग, गा० ६, पृ० ३८४
(ख) 'शब्दब्रह्मण: सद्भावे प्रमाणाभावात् ।'
३. (क) 'तद्धि शब्दब्रह्मनिरंशमिन्द्रियप्रत्यक्षादनुमानात्स्वसंवेदनप्रत्यक्षादागमाद्वा न प्रसिद्ध…।',
विद्यानन्द : तत्वार्थश्लोकवार्तिक, अध्याय १, तृतीय आह्निक, सूत्र २०, पृ० २४०
(ख) 'तथाहि तत्सद्भाव: प्रत्यक्षेण प्रतीयतानुमानेनागमेन वा ।', वादिदेवसूरि : स्याद्वादरत्नाकर, १/७, पृ० ९८
४. (क) 'यतस्तत्सद्भाव: किमिन्द्रियप्रभवप्रत्यक्षत: प्रतीयेत्, अतीन्द्रियात् स्वसंवेदनाद्वा ?', प्रभाचन्द्र : न्या० कु० च०, १/५, पृ० १४२
(ख) 'यदि प्रत्यक्षेण, तत्किमिन्द्रियप्रभवेणातीन्द्रियेण वा ।', स्या० र०, १/७, पृ० ९८
५. 'ब्रह्मणो न व्यवस्थानमक्षज्ञानात् कुतश्चन ।
स्वप्नादाविव मिथ्यात्वत्तस्य साकल्पत: स्वयम् ।', विद्यानन्द : त० श्लो० वा०, १/३, सूत्र २०, कारिका ९७, पृ० २४०
६. 'न तावत् प्रत्यक्षं तथावस्थितब्रह्मस्वरूपावेदकम् नीलादिव्यतिरेकेण तत्रापरस्य ब्रह्मस्वरूपस्याप्रतिभासनात् ।',
अभयदेवसूरि : सन्मतितर्कप्रकरणटीका, विभाग ३, का० ६, पृ० ३८४
७. 'न खलु यथोपवर्णितस्वरूपं शब्दब्रह्म प्रत्यक्षत: प्रतीयते, सर्वदा प्रतिनियतार्थस्वरूपग्राहकत्वेनैवास्य प्रतीते: ।',
प्रभाचन्द्राचार्य : प्रमेयकमलमार्त्तण्ड १/३ पृ० ४५
तुलना कीजिये : 'न तत्प्रत्यक्षत: सिद्धमविभागमभासनात् ।', शान्तिरक्षित : तत्वसंग्रह, कारिका १४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है ? दो ही विकल्प हो सकते हैं[1];

(क) श्रोत्रेन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष से ? अथवा

(ख) श्रोत्रेन्द्रिय से भिन्य अन्य किसी इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष से ?

श्रोत्रेन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष शब्दब्रह्म का साधक नहीं है : श्रोत्रेन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष को शब्दब्रह्म का साधक मानना ठीक नहीं है, क्योंकि श्रोत्रेन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष केवल शब्द को ही विषय करता है। दूसरे शब्दों में श्रोत्र का विषय शब्द है। अतः शब्द के अतिरिक्त वह अन्य किसी को नहीं जान सकता। यही कारण है कि श्रोत्रेन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष अपने विषय से भिन्न संसार के समस्त पदार्थों में अन्वित रूप से रहने वाले शब्द-ब्रह्म को जानने में असमर्थ है।[2] अनुमान-प्रमाण से भी यही सिद्ध होता है कि शब्दब्रह्म श्रोत्रजन्य प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। 'जो जिसका विषय नहीं होता, वह उससे अन्वित रहने वाले को कभी भी जानने में समर्थ नहीं हो सकता। जैसे—चक्षु-ज्ञान रसनेन्द्रिय से नहीं जाना जाता। चूंकि समस्त संसार के सभी पदार्थों में अन्वित रूप से रहने वाला शब्दब्रह्म श्रोत्रेन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष का विषय नहीं है, अतः श्रोत्रे-न्द्रियजन्य प्रत्यक्ष भी उपरिवत् उसका साधक नहीं हो सकता।'[3] श्रोत्रेन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष का विषय न होने पर भी यदि शब्दाद्वैतवादी श्रोत्रे-न्द्रियजन्य प्रत्यक्ष को शब्दब्रह्म का साधक मानेंगे तो समस्त इन्द्रियों से सभी पदार्थों के ज्ञान का प्रसंग आयेगा, जो किसी को मान्य नहीं है। अतः सिद्ध है कि श्रोत्रेन्द्रियजनित प्रत्यक्ष शब्दब्रह्म का साधक नहीं है।

शब्द श्रोत्रेतरेन्द्रिय का विषय नहीं है—श्रोत्रेन्द्रिय-भिन्न इन्द्रिय से जन्य प्रत्यक्ष भी शब्दब्रह्म का साधक नहीं है, क्योंकि शब्द उन इन्द्रियों का विषय नहीं है।[4] अतः इन्द्रिय प्रत्यक्ष के द्वारा शब्दब्रह्म की प्रतीति नहीं हो सकती।

अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष भी शब्दब्रह्म का साधक नहीं है—इन्द्रिय प्रत्यक्ष की भांति अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष के द्वारा भी शब्दब्रह्म की सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती, क्योंकि शब्दाद्वैतवाद में अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष की कल्पना भी नहीं की जा सकती।[5] इसके उत्तर में शब्दाद्वैतवादियों का कहना है कि अभ्युदय और निःश्रेयस फल वाले धर्म से अनुगृहीत अन्तःकरण वाले योगीजन उस शब्दब्रह्म को देखते हैं। अतः उनके अती-न्द्रिय प्रत्यक्ष से शब्दब्रह्म का अस्तित्व सिद्ध होता है। इसके प्रत्युत्तर में प्रभाचन्द्राचार्य एवं वादिदेवसूरि कहते हैं कि ऐसा मानना भी ठीक नहीं है, क्योंकि पहली बात तो यह है कि शब्दब्रह्म को छोड़कर अन्य कोई परमार्थभूत योगी नहीं है, जो उसे देखता हो। दूसरी बात यह है कि शब्दब्रह्म के अतिरिक्त पारमार्थिक रूप से योगी मानने पर योगी, योग और उससे उत्पन्न प्रत्यक्ष इन तीन तत्वों को मानना पड़ेगा और ऐसा मानने से अद्वैतवाद का अभाव हो जायेगा।[6] एक प्रश्न के प्रत्युत्तर में जैनतर्कशास्त्री यह भी कहते हैं कि योग्यावस्था में शब्दब्रह्म स्वयं आत्मज्योतिरूप से प्रकाशित होता है। यह मानना भी ठीक नहीं है, क्योंकि इस प्रकार की कल्पना करने पर भी योग्यावस्था, ज्योतिरूप और स्वयंप्रकाशन इन तीनों की सत्ता सिद्ध होने से द्वैत की सिद्धि और अद्वैत का अभाव सिद्ध होता है।[7]

शब्दाद्वैतवादियों को एक बात यह भी स्पष्ट करनी चाहिए कि योग्यावस्था में आत्मज्योतिरूप से प्रकाशित होने के पूर्व शब्द-ब्रह्म आत्मज्योति रूप से प्रकाशित होता है कि नहीं ?[8] यदि शब्दब्रह्म योग्यावस्था के पूर्व आत्मज्योति रूप से प्रकाशित होता है, यह माना जाय तो समस्त संसारी जीवों को बिना प्रयत्न के मोक्ष हो जायेगा, क्योंकि शब्दाद्वैत-सिद्धान्त में ज्योतिरूप ब्रह्म का प्रकाश हो जाना ही मोक्ष कहा गया है। अयोग्यावस्था में इस प्रकार के ज्योतिस्वरूप ब्रह्म के प्रकाशित हो जाने पर सबका मुक्त हो जाना युक्तिसंगत है। लेकिन

---

१. (क) 'तथाविधस्य चास्यसद्भावः श्रोत्रप्रभवप्रत्यक्षात्, इतरेन्द्रियजनिताध्यक्षाद्वा प्रतीयेत् ।,' प्रभाचन्द्र : न्या० कु० च०, १/५, पृ० १४२
   (ख) वादिदेवसूरि : स्या० र०, १/७, पृ० ९८

२. वही

३. (क) 'यद्यदगोचरो न तत्तेनान्वितत्वं कस्यचित् प्रतिपत्तुं समर्थम् यथा चक्षुर्ज्ञानं रसेन, अगोचरश्च तदाकारनिकटः श्रोत्रज्ञानस्येति ।', न्या० कु० च०, १/५, पृ० १४२
   (ख) स्या० र०, १/७, पृ० ९८

४. (क) स्या० र०, १/७, पृ० ९८
   (ख) न्या० कु० च०, १/५, पृ० १४२

५. 'नाप्यतीन्द्रियप्रत्यक्षात्; तस्यैवात्राऽसंभावात् ।'
   (क) प्रभाचन्द्र : न्या० कु० च०, पृ० १४२
   (ख) वादिदेवसूरि : स्याद्वादरत्नाकर, १/७, पृ० ९९

६. वही

७. वही

८. (क) 'किं च, योग्यावस्थायां तस्य तद्रूपप्रकाशनेन ततः प्राक् तद्रूपं प्रकाशते, न वा ?', वही
   (ख) अभयदेव सूरि : सन्मतितर्कप्रकरणटीका, तृतीय काण्ड, पृ० ३८५
   (ग) तत्वसंग्रहपञ्जिका, पृ० ७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा कभी हो नहीं सकता। अतः सिद्ध है कि योग्यावस्था के पूर्व आत्मज्योति का प्रकाश नहीं होता है।[1]

अब यदि उपर्युक्त दोष से बचने के लिए यह माना जाय कि वह योग्यावस्था के पूर्व आत्मज्योतिरूप से प्रकाशित नहीं होता है, तो इसका कारण बतलाना चाहिए कि वह क्यों नहीं प्रकाशित होता ? यहां भी विकल्प होते हैं कि क्या वह शब्दब्रह्म है कि नहीं ?[2] यदि शब्दाद्वैतवादी यह माने कि वह अयोग्यावस्था में नहीं रहता, तो उसे नित्य नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वह कभी होता है और कभी नहीं होता। यह नियम है कि जो कदाचित् अर्थात् कभी-कभी होता है, वह नित्य नहीं होता, जैसे—अविद्या। ज्योतिस्वरूप ब्रह्म भी अविद्या की तरह कभी-कभी होता है अर्थात् योग्यावस्था में होता है और अयोग्यावस्था में नहीं होता। अतः वह भी अविद्या की तरह अनित्य है। इस प्रकार ब्रह्म और अविद्या का द्वैत भी सिद्ध होता है। अतः शब्दाद्वैत-सिद्धान्त खण्डित हो जाता है।[3]

अब यदि यह माना जाय कि अयोग्यावस्था में शब्दब्रह्म आत्मज्योति रूप से प्रकाशित नहीं होता, फिर भी वह है, तो अभयदेव सूरि की भांति न्यायकुमुदचन्द्र में प्रभाचन्द्र और स्याद्वादरत्नाकर में वादिदेव प्रश्न करते हैं—शब्दाद्वैतसिद्धान्ती बतायें कि शब्दब्रह्म होने पर भी क्यों नहीं प्रकाशित होता ? यहां भी दो विकल्प हो सकते हैं।[4]

(क) ग्राहक का अभाव होने से वह प्रकाशित नहीं होता ? अथवा

(ख) अविद्या के अभिभूत होने से ?

यह मानना ठीक नहीं है कि ग्राहक (ज्ञान) का अभाव होने से वह प्रकाशित नहीं होता, क्योंकि शब्दाद्वैत-सिद्धान्त में शब्दब्रह्म ही ग्राहकरूप है और ग्राहकत्व शक्ति उसमें सदैव रहती है। तात्पर्य यह है कि शब्दब्रह्म में ग्राह्यत्व और ग्राहकत्व दोनों शक्तियां विद्यमान रहती हैं—ऐसा शब्दाद्वैतवादी मानते हैं। इसलिए जैन तर्कशास्त्रियों का कहना है कि जब शब्दब्रह्म में ग्राहकत्व शक्ति सदैव विद्यमान रहती है, तो उसे अयोग्यावस्था में प्रकाशित होना चाहिए।[5] अतः शब्दाद्वैतवादियों का यह तर्क ठीक नहीं है कि ग्राहक (ज्ञान) का अभाव होने से वह प्रकाशित नहीं होता।

अविद्या से अभिभूत होने से ब्रह्म होते हुए भी अयोग्यावस्था में वह प्रकाशित नहीं होता—यह विकल्प भी ठीक नहीं है, क्योंकि विचार करने पर अविद्या का अस्तित्व ही सिद्ध नहीं होता। प्रभाचन्द्र ने न्यायकुमुदचन्द्र में विशद रूप से अविद्या पर विचार कर उसका निराकरण किया है। वे प्रश्न करते हैं कि अविद्या ब्रह्म से भिन्न है कि अभिन्न ?[6] यदि अविद्या ब्रह्म से भिन्न है, तो जिज्ञासा होती है कि वह वस्तु (वास्तविक) है अथवा अवस्तु[7] (अवास्तविक) ? स्याद्वादरत्नाकर और शास्त्रवार्तासमुच्चयटीका में भी इसी शैली के अनुसार अविद्या का निराकरण किया गया है।

अविद्या अवस्तु नहीं हो सकती—शब्द-ब्रह्म से भिन्न मानकर अविद्या को अवस्तु नहीं माना जा सकता, क्योंकि अवस्तु वही होती है, जो अर्थक्रियाकारी न हो। अविद्या शब्द-ब्रह्म की भांति अर्थक्रियाकारी है, इसलिए उसे अवस्तु नहीं माना जा सकता। यदि अर्थक्रियाकारी होने पर भी उसे अवस्तु माना जाता है, तो शब्द-ब्रह्म को भी अवस्तु मानना पड़ेगा। प्रभाचन्द्र के मतानुसार अर्थक्रियाकारी होने पर उसे अवस्तु कहा जाता है, तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि अवस्तु अर्थक्रिया का दूसरा नाम है।[8]

अविद्या को अर्थक्रियाकारी न मानने से एक दोष यह भी आता है कि वह वस्तुरूप न हो सकेगी और ऐसा न होने पर शब्दाद्वैतवादियों का यह कथन 'अविद्या कलुषत्व की तरह हो जाती है' नहीं बन सकेगा।[9]

---

१. (क) तत्वसंग्रहपञ्जिका, पृ० ७४
   (ख) सन्मतितर्कप्रकरणटीका, तृतीय काण्ड, पृ० ३८५
२. 'अथ न प्रकाशते, तदा तत्किमस्ति, न वा ?', प्रभाचन्द्र : न्या० कु० च०, पृ० १४२
३. वही
४. (क) 'अथास्ति कस्मान्न प्रकाशते —ग्राहकाभावात् अविद्याभिभूतत्वाद्वा ?', प्रभाचन्द्र : न्या० कु० च०, १/५, पृ० १४२
   (ख) वादिदेव सूरि, १/७, पृ० ९९
५. '···ब्राह्मण एव तद्ग्राहकत्वात्, तस्य च नित्यतया सदा सत्वात्।', वादिदेव सूरि, १/७, पृ० ९९
६. (क) 'सा हि ब्रह्मणो व्यतिरिक्ता, अव्यतिरिक्ता वा ?', प्रभाचन्द्र : न्यायकुमुदचन्द्र, १/५, पृ० १४३
   (ख) 'सा हि शब्दब्रह्मणः सकाशाद्भिन्ना भवेदभिन्ना वा।', वादिदेवसूरि : स्या० र०, १/७, पृ० ९९
   (ग) यशोविजय : शा० वा० स० टी०, पृ० २३७
७. वही
८. 'तत्कारित्वेऽप्यस्या अवस्तु इति नामान्तरकरणे नाममात्रमिव भिद्येत्।', न्या० कु० च०, १/५, पृ० १४३
९. (क) 'कथमेवम् 'अविद्यया कलुषत्वमिवापन्नम्' इत्यादि वचो घटेत ?', न्या० कु० च०, १/५, पृ० १४३
   (ख) स्या० र०, १/७, पृ० ९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अविद्या के अवस्तु होने पर एक दोष यह भी आता है कि दृष्टान्त और दार्ष्टान्त में समानता नहीं रहती, क्योंकि आकाश में असत् (मिथ्या) प्रतिभास का कारणभूत अंधकार (तिमिर) वस्तुरूप है और अविद्या अवस्तुरूप। जब अविद्या अवस्तु है, तो वह विचित्र प्रतिभास का कारण कैसे बन सकती है। एक स्वभाव वाली दो वस्तुओं में दृष्टान्त और दार्ष्टान्त बन सकता है। वास्तविक और अवास्तविक पदार्थों में दृष्टान्त और दार्ष्टान्त नहीं बन सकता।[1]

अतः शब्दाद्वैतवादियों का यह कथन भी ठीक नहीं है कि 'जिस प्रकार तिमिर से उपहत जन विशुद्ध-आकाश को नाना प्रकार की रेखाओं से व्याप्त मान लेता है, उसी प्रकार यह अनादि-निधन-शब्दब्रह्म निर्मल और निर्विकार है, किन्तु अविद्या के कारण (अविद्यारूपी तिमिर से उपहत नर) उसे घट-पटादि कार्य के भेद से प्रादुर्भाव और विनाश वाला अर्थात् भेद रूप में देखता है।'

शब्दब्रह्म से भिन्न अवस्तुस्वरूप अविद्या के वशीभूत होकर नित्य, अनाधेय और अतिशय रूप शब्दब्रह्म भेद रूप से प्रतिभासित होता है, यह कथन भी तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि अवस्तु के वशीभूत होकर वस्तु अन्य रूप नहीं हो सकती।[2] प्रभाचन्द्र, अभयदेव[3] और वादिदेव[4] की भांति 'तत्वसंग्रह' के टीकाकार कमलशील[5] ने भी यही कहा है। इस प्रकार अविद्या को अवस्तु मानना न्यायसंगत नहीं है।

शब्द-ब्रह्म से भिन्न अविद्या को वस्तु मानना भी अतर्कसंगत है—उपर्युक्त दोषों के कारण शब्द-ब्रह्मवादियों का यह अभिमत कि अविद्या वस्तुरूप है, तर्कशील नहीं है? क्योंकि अविद्या को वस्तु मानने पर शब्दाद्वैतमत में निम्नांकित दोष आते हैं—

१. पहला दोष यह आता है कि स्वीकृत सिद्धान्त का विनाश हो जायेगा[6], क्योंकि अविद्या और ब्रह्म दो की सत्ता सिद्ध हो जायेगी।

२. दूसरा दोष यह है कि शब्द-ब्रह्म की भांति अविद्या भी वस्तुरूप है, अतः दो तत्वों के सिद्ध हो जाने से द्वैत की सिद्धि और अद्वैत का अभाव हो जायेगा।[7] अतः अविद्या को ब्रह्म से भिन्न मानना ठीक नहीं है।

अविद्या को शब्द-ब्रह्म से अभिन्न मानने में दोष—अविद्या शब्दब्रह्म से भिन्न नहीं है, यह सिद्ध हो जाने पर शब्दाद्वैतवादी उसे शब्द-ब्रह्म से अभिन्न नहीं मान सकते; क्योंकि ऐसा मानने से या तो अविद्या की तरह ब्रह्म असत्य हो जायेगा या ब्रह्म की तरह अविद्या सत्य हो जायेगी।[8]

उपर्युक्त दोनों विकल्प युक्तियुक्त नहीं हैं, क्योंकि अविद्या की तरह ब्रह्म के मिथ्यात्व रूप हो जाने से शब्दाद्वैतवाद में कोई तत्व पारमार्थिक सिद्ध नहीं हो सकेगा। अतः यदि ब्रह्म की भांति अविद्या शब्द-ब्रह्म से अभिन्न होने के कारण सत्य रूप मान ली जाय तो अविद्या मिथ्याप्रतीति का कारण कैसे मानी जा सकती है? क्योंकि यह अनुमान प्रमाण से सिद्ध है कि जो सत्य रूप होता है, वह मिथ्याप्रतीति का हेतु नहीं होता, जैसे—ब्रह्म से अभिन्न अविद्या भी सत्य होने से मिथ्याप्रतीति का कारण नहीं हो सकती। अतः अविद्या को शब्दब्रह्म से अभिन्न मानना भी ठीक नहीं है।

यहां एक बात यह भी है कि घोड़े के सींग की तरह अविद्या अवस्तु अर्थात् असत् होने से शब्दब्रह्म से बलशाली नहीं है। जो बलशाली होता है, वही निर्बल के स्वभाव को ढक लेता है। न कि निर्बल बलशाली के स्वभाव को, जैसे—सूर्य तारों के स्वभाव का अभिभव कर देता है। इस अनुमान से सिद्ध है कि अविचारणीय स्वभाव वाली अविद्या से शब्दब्रह्म का स्वभाव अभिभव नहीं हो सकता।[9]

एवंविध सिद्ध होता है कि शब्दब्रह्म के असत्य होने से अयोग्यावस्था में आत्मज्योतिस्वरूप शब्दब्रह्म अप्रकाशित रहता है, अविद्या के अभिभूत होने से नहीं। अयोग्यदशा में शब्दब्रह्म के असत् सिद्ध होने से यह भी सिद्ध हो जाता है कि योग्यावस्था में उसका अस्तित्व नहीं

---

१. (क) प्रभाचन्द्र : प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४५
(ख) प्रभाचन्द्र : न्या० कु० च०, १/५, पृ० १४३
(ग) वादिदेवसूरि : स्या० र०, १/५, पृ० ९९

२. 'न चाऽनाधेयाऽप्रहेयातिशयस्य ब्रह्मणः तद्वशात् तथाप्रतिभासो मुक्तोऽतिप्रसङ्गात्। नाप्यवस्तुवशाद्वस्तुनोऽन्यथाभावो भवति, अतिप्रसङ्गाच्च।', प्रभाचन्द्र : न्या० कु० च०, पृ० १४३

३. 'न च···ब्रह्मणि तस्या अकिञ्चित्करत्वात्···।', सन्मतितर्कप्र० टीका, तृतीय विभाग, पृ० ३८५

४. 'न···शब्दब्रह्मणोऽविद्यासामर्थ्याद्भेदेन प्रतिभासो ज्यायान्। अतिप्रसक्ते···।', स्या० र०, पृ० ९९-१००

५. 'अथ···ब्रह्मणः सा न किञ्चित् करोतीति न युक्तमविद्यावशात् तथा प्रतिभासनम्।', त० सं० पञ्जिका, का० १५१, पृ० ६५

६. (क) 'अथ वस्तु ; तन्न ; अभ्युपगमक्षतिप्रसक्तेः···।', न्या० कु० च०, १/५, पृ० १४३
(ख) स्या० र०, १/७, पृ० १००

७. वही

८. (क) द्रष्टव्य, न्या० कु० च०, १/५, पृ० १४३
(ख) स्या० र०, १/७, पृ० १००

९. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहता। अतः इन्द्रिय-प्रत्यक्ष की भांति अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष से भी उस शब्द-ब्रह्म की सत्ता सिद्ध नहीं होती।[१]

स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से भी शब्द-ब्रह्म का सद्भाव सिद्ध नहीं होता—स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से भी शब्दब्रह्म का सद्भाव सिद्ध नहीं होता; क्योंकि आ० विद्यानन्द कहते हैं[२] कि पहली बात यह है कि शब्दाद्वैतवादियों ने बौद्धों द्वारा मान्य क्षणिक और निरंश ज्ञान की सिद्धि स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से नहीं मानी। जब क्षणिक एवं निरंश ज्ञान की स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से सिद्धि नहीं हो सकती, तो शब्दब्रह्म की सिद्धि उससे कैसे हो सकती है ?

दूसरी बात यह है कि युक्तिरहित वचनमात्र से शब्दब्रह्म की सत्ता मान लेना भी युक्तियुक्त नहीं है। अन्यथा अश्व-विषाण आदि असत् पदार्थों का सद्भाव सिद्ध हो जायेगा।

प्रभाचन्द्राचार्य ने भी स्वसंवेदन प्रत्यक्ष द्वारा शब्दब्रह्म की प्रतीति का निराकरण करते हुए कहा है कि स्वप्न में भी आत्मज्योतिस्वभाव शब्दब्रह्म की प्रतीति स्वसंवेदन के द्वारा नहीं हो सकती। यदि स्वसंवेदन में उसकी प्रतीति होने लगे, तो बिना प्रयत्न किये समस्त प्राणियों को मोक्ष हो जायेगा। क्योंकि, शब्दाद्वैत-सिद्धान्त में यह माना गया है कि आत्मज्योतिस्वभाव शब्दब्रह्म का स्वसंवेदन होना मोक्ष है।[३] अभयदेव सूरि और कमलशील ने भी स्वसंवेदन को विरुद्ध बताकर उसका निराकरण किया है।[४] एक अन्य बात यह है कि घटादि शब्द और पदार्थ स्वसंविदित स्वभाव वाले नहीं हैं, इसके विपरीत सभी लोगों को अस्वसंविदित रूप ही प्रतीत होते हैं।[५] तात्पर्य यह है कि घट-पटादि शब्द और पदार्थ शब्दब्रह्म की पर्याय हैं और शब्दाद्वैतवादी शब्दब्रह्म को स्वसंविदितरूप मानते हैं। जैन तर्कशास्त्रियों का कथन यह है कि शब्दब्रह्म की भांति घटादि शब्द और पदार्थ स्वसंविदित रूप होने चाहिएं, क्योंकि वे उसी शब्द-ब्रह्म के विवर्त हैं। ऐसी प्रतीति किसी को नहीं होती; सभी को घटादि पदार्थ अस्वसंविदित रूप ही प्रतीत होते हैं। इससे सिद्ध है कि शब्दब्रह्म भी स्वसंविदित रूप नहीं है और प्रत्यक्ष प्रमाण से इसकी प्रतीति किसी को नहीं होती।

अनुमानप्रमाण भी शब्दब्रह्म का साधक नहीं है

अनुमान प्रमाण भी शब्दब्रह्म का साधक नहीं है, क्योंकि ऐसा कोई अनुमान नहीं है, जो शब्दब्रह्म की सिद्धि करता हो।[६] दूसरी बात यह है कि शब्दाद्वैतवादियों को अनुमान प्रमाण मान्य नहीं हैं। आचार्य विद्यानन्द कहते हैं[७] कि शब्दाद्वैतवादियों ने अनुमान के द्वारा अर्थों की प्रतीति को दुर्लभ माना है। उनका मत है कि जिस समय व्याप्ति का ग्रहण होता है, उसी समय सामान्य रूप से अनुमेय का ज्ञान हो जाता है। अनुमान काल में पुनः उसे सामान्यरूप से जानने पर सिद्ध-साधन दोष आता है। विशेष रूप से अनुमेय जानने के लिए हेतु का अनुगम गृहीत नहीं होता। अतः अनुमान से अर्थ-प्रतीति जब शब्दाद्वैत-सिद्धान्त में मान्य नहीं है, तो उससे शब्दब्रह्म की सिद्धि कैसे कर सकते हैं ? अर्थात् नहीं कर सकते।

अब यदि शब्दाद्वैतवादियों का यह अभिमत हो कि अन्य सिद्धान्तों में मान्य अनुमान-प्रमाण से शब्दब्रह्म की सिद्धि हो जाती है। तो, इसके प्रत्युत्तर में आचार्य विद्यानन्द का कथन है कि परवादियों की अनुमान प्रक्रिया शब्दाद्वैतवादियों के लिए प्रामाणिक नहीं है।

अभयदेव सूरि, प्रभाचन्द्र और तत्वसंग्रह के टीकाकारों ने विशद रूप से शब्दाद्वैतवादियों की इस युक्ति वा खण्डन करके सिद्ध

---

१. (क) स्या० र०, १/७, पृ० १००
(ख) न्या० कु० च०, १/५, पृ० १४३

२. 'स्वतःसंवेदनात्सिद्धिः क्षणिकानंशवित्तिवत् ।
न परब्रह्मणो नापि सा युक्ता साधनादिना ॥', त० श्लो० वा०, १/३, सू० २०, श्लोक ९८, पृ० २४०

३. '...आत्मज्योति स्वभावस्यास्य स्वप्नेऽपि संवेदनाऽगोचरत्वात् तद्गोचरत्वे वा अनुपायसिद्ध एव अखिलप्राणीनां मोक्षः स्यात्, तथाविधस्य हि शब्दब्रह्मणः स्वसंवेदनं यत् तदेव मोक्षो भवतामभिमतः ।', प्रभाचन्द्र, न्या० कु० च०, १/५, पृ० १४३

४. 'अथ ज्ञानरूपवत् स्वसंवेदनस्याध्यक्षत एव शब्दब्रह्म सिद्धम्...असदेतत्, स्वसंवेदनविरुद्धत्वात् तथाहि अन्यत्र गतचित्तोऽपि रूपं चक्षुषा वीक्षमाणोऽभिलापासंसृष्टमेव नीलादिप्रत्ययमनुभवतीति...।', अभयदेवसूरि : सन्मतितर्कप्रकरणटीका, तृतीय विभाग, गा० ६, पृ० ३८४
तुलना करें, '...तथाहि ज्योतिस्तदेव शब्दात्मकत्वाच्चैतन्यरूपत्वाच्चेति ? तदेतत् स्वसंवेदनविरुद्धम् । तथाहि अन्यत्र गतमानसोऽपि चक्षुषा रूपमीक्षमाणोऽनादिष्टाभिलापमेव नीलादिप्रत्ययमनुभवतीति ।', कमलशील : त० सं० टीका, पृ० १४७, पृ० ९२

५. 'न च घटादिशब्दोऽर्थो वा स्वसंविदितस्वभावः, यतस्तदन्वितत्वं स्वसंवेदनतः सिद्धयेत्, अस्वसंविदितस्वभावतयैवास्य प्रतिप्राणिप्रसिद्धत्वात् ।', न्या० कु० च०, १/५, पृ० १४४

६. 'नाप्यनुमानेन, तस्य तत्सद्भावावेदकस्य कस्यचिदसम्भवात् ।', वादिदेव सूरि : स्या० र०, १/७, पृ० १००

७. 'नानुमानात्ततोर्थानां प्रतीतेर्दुर्लभत्वतः ।
परप्रसिद्धिरप्यस्य प्रसिद्धा नाप्रामाणिका ॥', त० श्लो० वा०, १/३, सूत्र २०, श्लोक ९७, पृ० २४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया है कि अनुमान प्रमाण भी प्रत्यक्ष प्रमाण की भांति शब्दब्रह्म का साधक नहीं है। विकल्प प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कि अनुपलब्धि लिंग वाले अनुमान को विधिसाधक नहीं माना गया है। अत: शब्दाद्वैतवादियों को बताना चाहिए कि वे किस अनुमान को ब्रह्म का साधक मानते हैं[1]—

कार्यलिंग वाले अनुमान को ? अथवा

स्वभाव आदि लिंग वाले अनुमान को ?

कार्यलिंग वाले अनुमान को शब्दब्रह्म का साधक नहीं माना जा सकता, क्योंकि नित्य-एक-स्वभाव वाले शब्द ब्रह्म से कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। वह न तो क्रम से कार्य की निष्पत्ति (अर्थक्रिया) कर सकता है और न युगपत् (एक साथ)।[2] जब उसका कोई कार्य नहीं है, तो उसके साधक अनुमान का हेतु किसे बनाया जाय ? अर्थात् कार्य के अभाव में कार्यलिंग वाले अनुमान से शब्दब्रह्म की सिद्धि नहीं हो सकती।

स्वभावलिंग वाला अनुमान भी शब्दब्रह्म का साधक नहीं है, क्योंकि धर्मी रूप शब्दब्रह्म के सिद्ध होने पर ही उसके स्वभाव (स्वरूप) भूत धर्म वाले अनुमान से उसका अस्तित्व सिद्ध करना तर्कसंगत होता है। लेकिन जब शब्दब्रह्म नामक धर्मी ही असिद्ध है, तो उसका स्वभावलिंग भी असिद्ध होगा। अतः स्वभावलिंग वाला अनुमान शब्दब्रह्म का साधक ही नहीं हो सकता।[3] कार्य और स्वभाव लिंग को छोड़कर अन्य कोई ऐसा हेतु ही नहीं है, जो शब्दब्रह्म का साधक हो।

प्रभाचन्द्राचार्य कहते हैं कि शब्दाद्वैतवादियों का यह अनुमान भी ठीक नहीं है कि जो जिस आकार से अनुस्यूत होते हैं, वे उसी स्वरूप (तन्मय) के ही होते हैं। जैसे घट, शराव, उदंचन आदि मिट्टी के आकार से अनुगत होने के कारण वे मिट्टी के स्वभाव वाले हैं और सब पदार्थ शब्दाकार से अनुस्यूत हैं, अत: शब्दमय हैं। इस कथन के ठीक न होने का कारण यह है कि पदार्थ का शब्दाकार से अन्वित होना असिद्ध है।[4] शब्दाद्वैतवादियों का यह कथन तभी सत्य माना जाता, जब नील आदि पदार्थों को जानने की इच्छा करने वाला (प्रतिपत्ता) व्यक्ति प्रत्यक्ष प्रमाण से जानकर उन पदार्थों को शब्दसहित जानता। किन्तु ऐसा नहीं होता, इसके विपरीत वह उन पदार्थों को प्रत्यक्ष रूप से शब्दरहित ही जानता है।

इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि पदार्थों का स्वरूप शब्दों से अन्वित न होने पर भी शब्दाद्वैतवादियों ने अपनी कल्पना से मान लिया है कि पदार्थों में शब्दान्वितत्व है, इसलिए भी उनकी मान्यता असिद्ध है। तात्पर्य यह है कि 'शब्दान्वितत्व' रूप हेतु कल्पित होने से शब्दब्रह्म की सिद्धि के लिए दिये गये अनुमान प्रमाण से शब्दब्रह्म की सिद्धि नहीं होती।[5]

घटादि रूप दृष्टान्त साध्य और साधन से रहित है--शब्दब्रह्म की सिद्धि हेतु प्रयोज्य अनुमान भी घटादि रूप दृष्टान्त में साध्य और साधन के न होने से. निर्दोष नहीं है। क्योंकि, घटादि में सर्वथा एकमयत्व और एकान्वितत्व सिद्ध नहीं है।[6] समान और असमान रूप से परिणत होने वाले सभी पदार्थ परमार्थतः एकरूपता से अन्वित नहीं हैं।[7] इसलिए सिद्ध है कि अनुमान प्रमाण शब्दब्रह्म का साधक नहीं है।

---

१. (क) 'नाप्यनुमानतस्तत्सिद्धिः यतोऽनुमानं कार्यलिगजम् स्वभावहेतुप्रभवं वा तत्सिद्धये व्याप्रियते ?',
अभयदेवसूरि : सं० त० प्र० टी०, तृ० वि०, गा० ६, पृ० ३८४
(ख) '···अनुमानं हि कार्यलिङ्गं वा भवेत् स्वभावादिलिङ्गं वा ?', प्रभाचन्द्र : प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४५
(ग) 'नाप्यनुमानत: । तथा ह्यनुमानं भवत्कार्यलिङ्गं भवेत् स्वभावलिङ्गं वा ?', कमलशील : त० सं० पञ्जिका टीका, कारिका १४७-१४८, पृ० ९२-९३
२. (क) 'नाप्यनुमानतस्तत्सिद्धि···तत्सिद्धये व्याप्रियते ?', अभयदेवसूरि : सं० त० प्र० टी, तृ० वि०, गा० ६, पृ० ३८४
(ख) '···अनुमानं हि···भवेत् स्वभावादिलिङ्गं वा ?', प्रभाचन्द्र : प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४५
(ग) 'नाप्यनुमानत:···स्वभावलिङ्गं वा ?', कमलशील : त० सं० पंजिका टीका, कारिका १४७-४८, पृ० ९२-९३
३. वही,
तुलना करें : 'धर्मिसत्वाप्रसिद्धेस्तु, स्वभाव: प्रसाधक: ।', त० सं०, कारिका १४८
४. '···तदप्युक्तिमात्रम्; शब्दाकारान्वितत्वस्यासिद्धे:'
(क) न्या० कु० च०, १/५, पृ० १४५
(ख) प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४६
५. 'कल्पितत्वाच्चास्याऽसिद्धि. ।', वही
तुलना के लिए द्रष्टव्य : त० सं० टीका, पृ० ९१
६. 'साध्यसाधनविकलश्च दृष्टान्तो···।', वही
७. (क) 'न खलु भावानां परमार्थेनैकरूपानुगमोस्ति ।', वही
(ख) स० त० प्र० टीका, पृ० ३८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगम प्रमाण से शब्द-ब्रह्म की सिद्धि संभव नहीं है

आगम प्रमाण से शब्दब्रह्म की सिद्धि भी तर्कसंगत नहीं है। एतदर्थ विद्यानन्द कहते हैं कि यदि शब्दाद्वैतवादी जिस आगम से शब्दब्रह्म की सिद्धि मानेंगे, तो उसी आगम से भेद की सिद्धि भी क्यों नहीं मानेंगे ?[1] इस प्रकार आगम शब्दब्रह्म का साधक नहीं है।

निर्बाध आगम प्रमाणान्तर से सिद्ध नहीं है—शब्दाद्वैतवादियों का यह कहना कि निर्बाध (बाधारहित) आगम से शब्द-ब्रह्म की सिद्धि होती है, ठीक नहीं है। अनुमान, तर्क आदि प्रमाणों के द्वारा उसकी निर्बाधता सिद्ध होने पर ही तर्कशास्त्री उसे निर्बाध आगम मान सकते हैं, लेकिन प्रमाणों से उसकी निर्बाधता सिद्ध नहीं होती। अनुमानादि से रहित उस आगम की निर्बाधता तर्कशास्त्रियों को मान्य नहीं है।[2]

शब्दब्रह्म से भिन्न आगम नहीं है—विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र, वादिदेव सूरि विकल्प प्रस्तुत करते हुए पूछते हैं कि शब्दब्रह्म से आगम भिन्न है अथवा अभिन्न ?[3] शब्दाद्वैतवाद में शब्द-ब्रह्म से भिन्न को आगम नहीं माना गया है। जब वह आगम उससे भिन्न नहीं है, तो उससे शब्दब्रह्म की सिद्धि नहीं हो सकती।[4] आगम को ब्रह्म से भिन्न मानने पर द्वैत की सिद्धि हो जाएगी।[5]

उपर्युक्त दोष से बचने के लिए शब्दाद्वैतवादी यह युक्ति दें कि आगम शब्दब्रह्म का विवर्त है, अतः उससे उसकी सिद्धि हो जायेगी। इसके उत्तर में विद्यानन्द का कथन है कि ऐसा मानने पर आगम अविद्या स्वरूप सिद्ध हुआ। जो अविद्या स्वरूप है, वह अविद्या की तरह अवस्तु अर्थात् असत् सिद्ध हुआ। अतः अवस्तुरूप आगम वस्तुभूत ब्रह्म का साधक नहीं हो सकता।[6]

आगम को शब्द-ब्रह्म से अभिन्न मानने में दोष—अब यदि शब्दाद्वैत-सिद्धान्ती माने कि आगम शब्दब्रह्म से अभिन्न है, तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि आगम को ब्रह्म से अभिन्न मानने पर तद्वत आगम भी असिद्ध हो जायेगा।[7] इस प्रकार सिद्ध है कि आगम प्रमाण भी शब्दब्रह्म का साधक नहीं है।

आगम को शब्दब्रह्म का साधक मानने से परस्पराश्रय नामक दोष भी आता है, क्योंकि ब्रह्म का अस्तित्व हो तो आगम सिद्ध हो और आगम हो तो उससे ब्रह्म की सिद्धि हो। इस प्रकार सिद्ध है कि आगम और शब्दब्रह्म दोनों की सिद्धि परस्पर आश्रित है। अतः प्रत्यक्ष-अनुमान की भांति आगम-प्रमाण से भी शब्दब्रह्म की सिद्धि नहीं होती। इन प्रत्यक्षादि प्रमाणों के अतिरिक्त कोई अन्य प्रमाण ऐसा नहीं है, जिससे उसकी सिद्धि हो सके। प्रमाणों के द्वारा सिद्ध न होने पर भी यदि किसी पदार्थ को सिद्ध मान लिया जाए, तो वह तार्किकों के समक्ष जल के बुलबुले के समान अधिक समय तक स्थित नहीं रह सकेगा।[8] तात्पर्य यह है कि जिस पदार्थ की सिद्धि प्रमाणों से नहीं होती, वह तर्कशास्त्रियों को मान्य नहीं होता। शब्दब्रह्म भी किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं होता, इसलिए उसका अस्तित्व नहीं है।

जगत् शब्दमय नहीं

शब्दाद्वैतवादी सम्पूर्ण जगत् को शब्दमय मानते हैं। उनका यह मत तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि जब उस पर विचार किया जाता है, तो तार्किक रूप से वह शब्दमय सिद्ध नहीं होता। सन्मतितर्कप्रकरण के टीकाकार अभयदेव सूरि, प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्र के प्रणेता प्रभाचन्द्र और स्याद्वादरत्नाकरकार वादिदेवसूरि ने गम्भीरतापूर्वक विचार कर यह सिद्ध किया है कि जगत् शब्दमय नहीं है। तत्व-संग्रह और उसकी पंजिका टीका में भी जैन आचार्यों की भांति तार्किक रूप से जगत् के शब्दमय होने का निराकरण किया गया है।

उपर्युक्त आचार्य कहते हैं कि यदि सम्पूर्ण जगत् शब्दमय है तो शब्दाद्वैतवादियों को बताना होगा कि जगत् शब्दमय क्यों है ?

---

१. 'आगमादेव तत्सिद्धौ भेदसिद्धिस्तथा न किम् ॥', त० श्लो० वा०, १/३, सूत्र २०, श्लोक ९९
२. 'निर्बाधादेव चेत्तत्वं न प्रमाणांतरादृते ।
तदागमस्य निश्चेतुं शक्यं जातु परीक्षकैः ।', वही, श्लोक ९९-१००
३. (क) त० श्लो० वा०, १/३, सू० २०, श्लोक १०, पृ० २४१
(ख) प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४६
(ग) स्या० र०, १/७, पृ० १०१-१०२
४. 'न चागमस्ततो भिन्नसमस्ति परमार्थतः ॥', त० श्लो० वा०, १/३, सूत्र २०, श्लोक १००
५. (क) '···ब्रह्मणोऽर्थान्तरभावे—द्वैतप्रसंगात् ।', प्रभाचन्द्र : प्र० क० मा०, १/३, ४६
(ख) वादिदेवसूरि : स्या० र०, १/७, पृ० १०१
६. 'सद्विवर्तस्त्वविद्यात्मा तस्य प्रज्ञापकः कथं ।', त० श्लो० वा०, १/३, सूत्र २०, श्लोक १०१
७. (क) 'अनर्थान्तरभावे तु तद्वदागमस्याप्यसिद्धिप्रसंङ्गः ।', प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४६
(ख) स्या० र०, १/७, पृ० १०२
८. 'न चाविनिश्चिते तत्त्वे फेनबुद्बुद्वद्भिदा ।', त० श्लो० वा०, १/३, सू० २०, का० १०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्या इसलिए उसे शब्दमय माना जाता है कि जगत् शब्द का परिणाम है या इसलिए कि वह शब्द से उत्पन्न हुआ है ?[1] इन दो विकल्पों के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है, जिससे जगत् को शब्दमय सिद्ध किया जा सके।

जगत् शब्द का परिणाम नहीं है—उपर्युक्त दो विकल्पों में से शब्दाद्वैतवादी इस विकल्प को माने कि जगत् शब्द का परिणाम होने के कारण शब्दमय है, तो उनकी यह मान्यता न्यायसंगत नहीं है। क्योंकि प्रथमतः निरंश और सर्वथा नित्य शब्द-ब्रह्म में परिणाम हो ही नहीं सकता।[2] शब्दब्रह्म में जब परिणमन असम्भव है, तो जगत् शब्दब्रह्म का परिणाम कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता।

शब्दब्रह्म परिणमन करते समय अपने स्वाभाविक स्वरूप को छोड़ता है या नहीं ?—शब्दब्रह्म को परिणामी मानने पर प्रश्न होता है कि शब्दात्मक ब्रह्म जब नील आदि पदार्थ रूप से परिणमित होता है, तो वह अपने स्वाभाविक शब्दरूप स्वभाव का त्याग करता है अथवा नहीं ?[3] यदि उपर्युक्त विकल्पों में से यह माना जाय कि शब्दब्रह्म परिणमन करते समय अपने स्वाभाविक स्वरूप को छोड़ देता है, तो ऐसा मानना ठीक नहीं है, क्योंकि शब्दब्रह्म में 'विरोध' नामक दोष आता है। शब्दब्रह्म का स्वरूप अनादिनिधन है और जब वह अपने पूर्व स्वभाव का त्याग कर जलादि रूप से परिणमन करेगा, तो उसके अनादिनिधनत्व (पूर्व स्वभाव) का विनाश हो जायेगा; जो शब्दाद्वैतवादियों को अभीष्ट नहीं है। अतः शब्दब्रह्म अपने पूर्व स्वरूप को त्याग कर जलादिरूप से परिणमन करता है, यह विकल्प ठीक नहीं है।[4]

उपर्युक्त दोष से बचने के लिए यह माना जाय कि शब्दब्रह्म अपने स्वाभाविक पूर्व स्वरूप को छोड़े बिना जलादि पदार्थ रूप से परिणमन करता है तो उनकी यह मान्यता भी निर्दोष नहीं है। इस दूसरे विकल्प के मानने पर एक कठिनाई यह आती है कि नीलादि पदार्थ के संवेदन के समय बधिर (जिसे सुनाई नहीं पड़ता है) को शब्द का संवेदन होना चाहिए, क्योंकि वह नील पदार्थ शब्दमय है[5] अर्थात् नील पदार्थ और नील शब्द अभिन्न हैं। इस बात की पुष्टि अनुमान प्रमाण से भी होती है कि जो जिससे अभिन्न होता है, वह उसका संवेदन होने पर संविदित हो जाता है। जैसे—पदार्थों के नील आदि रंग को जानते समय उससे भिन्न नील पदार्थ भी जान लिया जाता है।[6] शब्दाद्वैतवादियों के सिद्धान्तानुसार नील-पीत आदि पदार्थ से शब्द अभिन्न है। इसलिए जब बधिर पुरुष नील पदार्थ को जानता है, तो उसी समय अर्थात् नील पदार्थ जानते समय उसे शब्द का संवेदन अवश्य होना चाहिए। शब्दाद्वैतवादी कहते हैं कि शब्द का संवेदन बधिर मनुष्य को नहीं होता, तो प्रभाचन्द्र आदि आचार्य प्रत्युत्तर में कहते हैं कि उसे नीलादि रंग का भी संवेदन नहीं होना चाहिए, क्योंकि नील पदार्थ के साथ जिस प्रकार रंग तादात्म्य रूप से रहता है, उसी प्रकार शब्द का भी उसके साथ तादात्म्य सम्बन्ध है। दूसरे शब्दों में नील रंग और शब्द दोनों नील पदार्थ से अभिन्न हैं। यदि नील पदार्थ के नीले रंग का अनुभव हो और उससे अभिन्न शब्द का अनुभव बधिर पुरुष को न हो तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक वस्तु में दो विरुद्ध धर्म हैं। दो विरुद्ध धर्मों से युक्त उस शब्द-ब्रह्म को नील पदार्थ से भिन्न मानना पड़ेगा। एक वस्तु का एक ही समय में एक ही प्रतिपत्ता (ज्ञाता) की अपेक्षा से ग्रहण और अग्रहण मानना ठीक नहीं है। इस प्रकार विरुद्ध धर्माध्यास होने पर भी नीलादि पदार्थ और शब्द में भेद सिद्ध होता है। यदि उनमें भेद न माना जाय तो हिमालय और विन्ध्याचल आदि में भी भेद असंभव हो जायेगा। शब्दब्रह्म अपने पूर्व स्वभाव को छोड़कर नीलादि पदार्थ रूप में परिणमित होता है, ऐसा मानना भी निर्दोष नहीं है। अतः जगत् को शब्दमय मानना ठीक नहीं।

---

१. 'किमत्र जगतः शब्दपरिणामरूपत्वाच्छब्दमयत्वं साध्यते उत शब्दात् तस्योत्पत्तेः शब्दमयत्वं यथा अन्नमयाः प्राणा, इति हेतो'''।'
   (क) सं० त० प्र० टीका, पृ० ३८०-३८१
   (ख) प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४३
   (ग) न्या० कु० चं०, १/५, पृ० १४५; स्या० र०, पृ० १००
   (घ) त० सं० टीका, का० १२६, पृ० ८६.
२. 'न तावदाद्यः पक्षः परिणामानुपपत्तेः।', न्या० कु० च०, १/५, पृ० १४५
३. 'शब्दात्मकं हि ब्रह्म नीलादिरूपतां प्रतिपद्यमानं स्वभाविकं शब्दरूपं परित्यज्य प्रतिपद्येत, अपरित्यज्य वा ?', वही
४. (क) 'प्रथमपक्षे अस्याऽनादिनिधनत्वविरोध'''।', अभवदेवसूरि : सं० त० प्र०, पृ० ३८१
   (ख) प्रभाचन्द्र : प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४३
   (ग) प्रभाचन्द्र : न्या० कु० चं०, १/५, पृ० १४६
   (घ) वादिदेवसूरि : स्या० र० १/७, पृ० १००
   (ङ) 'न वा तथेति यद्याद्यः पक्षः संश्रीयते तदा।
   अक्षरत्ववियोगः स्यात् पौरस्त्यात्मविनाशात्॥', त० सं०, का० १३०,
   और भी देखें : टीका, पृ० ८७
५. '''रूपसंवेदनसमये बधिरस्य शब्दसंवेदनप्रसंगः'''।', वही
६. 'यत्खलु यदव्यतिरिक्तं तत्तस्मिन्संवेद्यमाने संवेद्यते''', नीलाद्यव्यतिरिक्तश्च शब्द इति।', वही
   तुलना करें : त० सं०, का० १३१ एवं पंजिका टीका, पृ० ८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभाचन्द्र वादिदेव सूरि आदि जैन आचार्य शब्दाद्वैतवादियों से एक प्रश्न यह भी करते हैं कि शब्दब्रह्म उत्पत्ति और विनाश रूप परिणमन करता हुआ प्रत्येक पदार्थ में भिन्न परिणाम को प्राप्त होता है या अभिन्न ?[१] यदि यह माना जाय कि शब्दब्रह्म परिणमन करता हुआ, जितने पदार्थ हैं, उतने ही रूपों में होता है तो शब्दाद्वैतवादियों का ऐसा मानना ठीक नहीं है, क्योंकि शब्दब्रह्म में अनेकता का प्रसंग आता है। जितने स्वभाव वाले विभिन्न पदार्थ हैं, उतने स्वभाव वाला ही शब्दब्रह्म को मानना पड़ेगा।[२] इस दोष से बचने के लिए ऐसा माना जाय कि शब्दब्रह्म जब अनेक पदार्थरूप में परिणमित होता है, तो वह प्रत्येक पदार्थ में भिन्न परिणाम को प्राप्त नहीं होता अर्थात् अभिन्न रूप से परिणमन करता है। इस सन्दर्भ में प्रभाचन्द्रादि कहते हैं कि यह पक्ष भी निर्दोष नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने से नील-पीत आदि पदार्थों में देश-भेद, काल-भेद, स्वभाव-भेद, अवस्था-भेद आदि का अभाव हो जायेगा। तात्पर्य यह है कि जो एक स्वभाव वाले हैं, वे शब्द-ब्रह्म से अभिन्न हैं। जबकि प्रत्यक्ष रूप से सबको देश-भेद, काल-भेद, स्वभाव-भेद आदि भेदों का अनुभव होता है। अतः ऐसा मानना न्यायसंमत नहीं है कि शब्दब्रह्म परिणमन करता हुआ प्रत्येक पदार्थ में भिन्नता को प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार दोनों विकल्प सदोष होने पर यह सिद्ध हो जाता है कि शब्द का परिणाम होने से जगत् शब्दमय नहीं है।[३]

शब्द से उत्पन्न होने के कारण जगत् शब्दमय सिद्ध नहीं होता—प्रभाचन्द्र, वादिदेव सूरि आदि जैनतर्कवादी कहते हैं कि शब्दाद्वैतवादियों का यह कथन भी ठीक नहीं है कि शब्दब्रह्म से उत्पन्न होने के कारण जगत् शब्दमय है, क्योंकि उन्होंने शब्दब्रह्म को सर्वथा नित्य माना है। सर्वथा नित्य होने से वह अविकारी है अर्थात् उसमें किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता। नित्य शब्दब्रह्म से क्रमशः कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती।[४] अतः सम्पूर्ण कार्यों की एक साथ एक ही समय में उत्पत्ति हो जायेगी, क्योंकि यह नियम है कि समर्थ कारण का अभाव (वैकल्य) होने पर कार्यों की उत्पत्ति में विलम्ब होता है। समर्थ कारण के उपस्थित रहने पर कार्यों की उत्पत्ति में विलम्ब नहीं होता। जब शब्दब्रह्म कारण अविकल्प (समर्थ) रूप से विद्यमान है, तब कार्यों को और किसकी अपेक्षा है, जिससे उनकी एक साथ उत्पत्ति न हो।[५] समर्थ कारण के रहने पर अवश्य ही समस्त कार्यों की उत्पत्ति हो जायेगी।

घटादि कार्य-समूह शब्दब्रह्म से भिन्न उत्पन्न होता है या अभिन्न ?—प्रभाचन्द्राचार्य और वादिदेव सूरि एक प्रश्न यह भी करते हैं कि घट, पटादि कार्य-समूह शब्दब्रह्म से भिन्न उत्पन्न होता है या अभिन्न ?[६] यदि शब्दाद्वैतवादी इसके उत्तर में यह कहें कि घट, पटादि कार्य-समूह शब्दब्रह्म से भिन्न उत्पन्न होता है, तो प्रत्युत्तर में जैन दार्शनिक कहते हैं कि शब्दाद्वैतवादी का 'शब्दब्रह्मविवर्तमर्थरूपेण' (शब्द-ब्रह्म अर्थरूप से परिणमन करता है) यह कथन कैसे बनेगा अर्थात् नहीं बनेगा। शब्दब्रह्म से जब घट-पटादि पदार्थ उत्पन्न होते हैं और वे उनके स्वभावरूप नहीं हैं, तो यह कहना उचित नहीं है कि घट, पटादि पदार्थ शब्दब्रह्म की पर्याय हैं।

शब्दब्रह्म से घटादि कार्य भिन्न हैं, तो अद्वैतवाद का विनाश और द्वैतवाद की सिद्धि होती है। क्योंकि, शब्दब्रह्म से भिन्न कार्य की स्वतंत्र सत्ता सिद्ध हो जाती है।[७] अतः घटादि कार्य समूह शब्दब्रह्म से भिन्न उत्पन्न होता है—यह मान्यता ठीक नहीं है।

घटादि कार्य की शब्दब्रह्म से अभिन्न उत्पत्ति मानने में शब्दब्रह्म में अनादिनिधनत्व का विरोध है—उपर्युक्त दोष से बचने के लिए शब्दाद्वैतवादी यह माने कि घटादि कार्य शब्दब्रह्म से अभिन्न रूप होकर उत्पन्न होता है, तो उनकी यह मान्यता भी ठीक नहीं है,

---

१. 'किंच असौ शब्दात्मा परिणामं गच्छन्प्रति पदार्थभेदं प्रतिपद्यते, न वा ?'
   (क) प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४४
   (ख) न्या० कु० चं०, १/५, पृ० १४६
   (ग) स्या० र०, १/७, पृ० १०१
२. 'तत्राद्यविकल्पे शब्दब्रह्मणोऽनेकत्वप्रसंगः, विभिन्नानेकस्वभावाऽर्थात्मकत्वात् तत्स्वरूपवत् ।', वही
३. 'तन्न शब्दपरिणामत्वाज्जगतः शब्दमयत्वं घटते ।', वही,
४. (क) प्रभाचन्द : न्या० क० चं०, १/५, पृ० १४६
   (ख) प्रभाचन्द्र : प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४४
   (ग) वादिदेव सूरि : स्या० र०, १/७, पृ० १०१
५. 'कारणवैकल्याद्धि कार्याणि विलम्बन्ते नान्यथा । तच्चेदविकलं किमपरं तैरपेक्ष्यं येन युगपन्न भवेयुः ?'
   (क) प्र० क० मा०, पृ० ४४
   (ख) न्या० कु० चं० पृ० १४७
६. 'किंच अपरापरकार्यग्रामोऽतोऽर्थान्तरम् अनर्थान्तरं वोत्पद्येत ?'
   (क) प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४४
   (ख) स्या० र०, १/७, पृ० १०१
७. वादिदेव सूरि : स्या० र०, १/७, पृ० १०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि ऐसा मानने पर शब्दब्रह्म में अनादिनिधनत्व का विरोध प्राप्त होता है[1] अर्थात् शब्दब्रह्म में अनादिनिधनता नहीं रहेगी। प्रत्यक्ष में हम देखते हैं कि शब्दब्रह्म से उत्पन्न होने वाले घटादि कार्य उत्पाद और विनष्ट स्वभाव वाले हैं और शब्दब्रह्म उनसे अभिन्न है। अतः उत्पत्ति और विनाशशील पदार्थों के साथ शब्दब्रह्म की एकता होने के कारण शब्दब्रह्म का एकत्व नष्ट हो जायेगा। अतः घटादि कार्य शब्दब्रह्म से उत्पन्न होकर उससे अभिन्न रूप रहते हैं, ऐसा मानना तर्कहीन है।[2]

इस प्रकार विशद रूप से विवेचन करने पर यह सिद्ध हो जाता है कि सम्पूर्ण जगत् शब्दमय नहीं है।

ज्ञान शब्दानुविद्ध नहीं है

शब्दाद्वैतवादियों का यह कथन तर्कहीन है कि शब्द के बिना ज्ञान नहीं होता। प्रभाचन्द्राचार्य 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' में उनसे प्रश्न करते हैं कि यदि ज्ञान में शब्दानुविद्धत्व का प्रतिभास होता है अर्थात् ज्ञान शब्दानुविद्ध है, तो इसकी प्रतीति किस को होती है और किस प्रमाण से यह जाना जाता है कि ज्ञान में शब्दानुविद्धता है, प्रत्यक्ष प्रमाण से या अनुमान प्रमाण से ?[3]

ज्ञान में शब्दानुविद्धता प्रत्यक्ष प्रमाण से प्रतीत नहीं होती—'ज्ञान शब्दानुविद्ध है' इसकी प्रतीति प्रत्यक्ष प्रमाण से मानने पर प्रश्न होता है कि ज्ञान में शब्दानुविद्धत्व का प्रतिभास किस प्रत्यक्ष से होता है, इन्द्रिय प्रत्यक्ष से अथवा स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से।[4]

ज्ञान इन्द्रिय प्रत्यक्ष का विषय नहीं है—इन्द्रिय प्रत्यक्ष से ज्ञान में शब्दानुविद्धत्व का प्रतिभास नहीं हो सकता, क्योंकि इन्द्रिय प्रत्यक्ष की प्रवृत्ति रूपादि विषयों में होती है। ज्ञान उसका विषय नहीं है।

ज्ञान स्वसंवेदन प्रत्यक्ष का विषय नहीं है—स्वसंवेदन से भी शब्दानुविद्धत्व का प्रतिभास नहीं होता है, क्योंकि स्वसंवेदन शब्द को विषय नहीं करता। अतः सिद्ध है कि प्रत्यक्ष प्रमाण से यह सिद्ध नहीं होता कि ज्ञान में शब्दानुविद्धत्व है।

अनुमान प्रमाण से भी ज्ञान में शब्दानुविद्धत्व की प्रतीति नहीं होती—अब यदि माना जाय कि अनुमान प्रमाण से ज्ञान में शब्दानुविद्धत्व की प्रतीति होती है, तो ऐसा कहना भी तर्कसंगत नहीं है। अविनाभावी लिंग के होने पर ही अनुमान अपने साध्य का साधक होता है। यहां पर कोई ऐसा लिंग नहीं है, जिससे यह सिद्ध हो सके कि ज्ञान में शब्दानुविद्धत्व है। यदि ऐसा कोई हेतु संभव भी हो, तो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से पक्ष के बाधित हो जाने के कारण प्रयुक्त हेतु वास्तविक कालात्ययापदिष्ट नामक दोष से दूषित हेत्वाभास हो जाएगा। अतः ज्ञान में शब्दानुविद्धत्व अनुमान प्रमाण से भी सिद्ध नहीं होता।[5]

जगत् शब्दमय नहीं है, अतः ज्ञान भी शब्दमय नहीं है—शब्दाद्वैतवादियों का यह कथन भी ठीक नहीं है कि जगत् के शब्दमय होने से उसके अन्तर्वर्त्ती ज्ञान भी शब्दस्वरूप हो जाएंगे और इस प्रकार ज्ञान में शब्दानुविद्धत्व सिद्ध हो जाएगा। इस कथन के ठीक न होने का कारण यह है कि जगत् में शब्दमयत्व प्रत्यक्षादि से बाधित है।[6] सविकल्पक प्रत्यक्ष द्वारा पद, वाक्यादि में अनुस्यूत शब्दाकार से भिन्न गिरि वृक्ष, लता आदि अर्थ स्पष्ट (विशद) रूप से प्रतीत होते हैं।

अनुमान प्रमाण से भी यह सिद्ध हो जाता है कि पदार्थ शब्दरहित हैं, यथा—"जो जिस आकार से पराङ्मुख (पृथक्) होते हैं, वे वास्तव में (परमार्थ से) भिन्न (अतन्मय) होते हैं, जैसे—जल के आकार से रहित (विकल) स्थास, कोश, कुशूलादि वास्तव में तन्मय नहीं हैं; पद, वाक्यादि से भिन्न गिरि, तरु, लतादि वास्तव में शब्दाकार से पराङ्मुख हैं।" इस अनुमान से सिद्ध है कि पदार्थ शब्दरहित है।[7] शब्दाद्वैतवादियों का यह कथन भी तर्कसंगत नहीं है कि जगत् शब्दमय है, इसलिए उसका अन्तर्वर्ती ज्ञान शब्दमय है। ज्ञान में शब्दानुविद्धता (ज्ञान शब्दमय है) प्रत्यक्ष एवं अनुमान प्रमाण से सिद्ध नहीं होती, अतः शब्दाद्वैतवादियों की यह मान्यता खंडित हो जाती है कि ज्ञान शब्दमय है, इसी कारण से वह पदार्थों को प्रकाशित करता है।

---

१. (क) स्या० र०, १/७, पृ० १०१
   (ख) प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४४
२. 'अनर्थान्तरभूतस्य तु कार्यग्रामस्योत्पत्तौ शब्दब्रह्मणोऽनादिनिधनत्वविरोधः। तदुत्पत्तौ तस्याप्यनर्थान्तरभूतस्योत्पद्यमानत्वादुत्पन्नस्य चावश्यं विनाशित्वादिति।'
   (क) स्या० र०, पृ० १०१
   (ख) प्र० क० मा०, पृ० ४४
३. 'तद्धि प्रत्यक्षेण प्रतीयते अनुमानेन वा ?', प्रभाचन्द्र : प्र० क० मा०, १/३, पृ० ३९
४. 'प्रत्यक्षेण चेत्किमैन्द्रियेण स्वसंवेदनेन वा ?', वही, १/३, पृ० ३९-४०
५. अनुमानात्तेषां···मनोरथमात्रम्; तदविनाभाविलिंगाभावात्।', प्रभाचन्द्र : प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४३
६. 'तदप्यनुपपन्नमेव; तत्तन्मयत्वस्याध्यक्षादिबाधित्वात्···।', वही, पृ० ४३
७. वही,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दानुविद्धत्व क्या है ?

शब्दाद्वैतवादियों ने ज्ञान को शब्दानुविद्ध माना है। अतः प्रभाचन्द्राचार्य उनसे प्रश्न करते हैं कि शब्दानुविद्धत्व क्या है ?[१] निम्नांकित दो विकल्पों में से किसी एक विकल्प को शब्दानुविद्धत्व माना जा सकता है—

(क) क्या शब्द का प्रतिभास होना (जहां पदार्थ है, वहां शब्द है, ऐसा प्रतिभास होना) शब्दानुविद्धत्व है ? अथवा

(ख) अर्थ और शब्द का तादात्म्य होना ?

उपर्युक्त दोनों विकल्पों में से किसी भी विकल्प को शब्दानुविद्धत्व मानना दोषविहीन नहीं है, अतः शब्दानुविद्धत्व का स्वरूप ही निश्चित नहीं हो सकता।

(क) **क्या शब्द का प्रतिभास होना शब्दानुविद्धत्व है**—शब्दानुविद्धत्व का यह स्वरूप कि जिस स्थान पर पदार्थ रहते हैं, वहीं पर शब्द रहते हैं—यह मत तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण से शब्दरहित पदार्थ की प्रतीति होती है।[२] पदार्थ शब्दानुविद्ध है, ऐसा किसी को कभी भी प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता। प्रत्यक्ष में जिस प्रकार सामने स्थित नीलादि प्रतिभासित होता है, उसी प्रकार तद्देश में शब्द प्रतिभासित नहीं होता। शब्द श्रोता के कर्णप्रदेश में प्रतिभासित होता है। इस प्रकार वाच्य (पदार्थ) और वाचक (शब्द) का देश भिन्न-भिन्न होता है। भिन्न देश में उपलब्ध शब्द को अर्थदेश में नहीं माना जा सकता, अन्यथा अतिप्रसंग नामक दोष आएगा। अतः अर्थ के अभिन्न देश में शब्द का प्रतिभास होना शब्दानुविद्धत्व नहीं है।

(ख) **शब्दानुविद्धत्व का अभिप्राय पदार्थ के साथ शब्द का तादात्म्य मानना ठीक नहीं है**—अर्थ और शब्द का तादात्म्य मानना भी ठीक नहीं है, क्योंकि शब्द और अर्थ विभिन्न इन्द्रियों के द्वारा जाने जाते हैं, इसलिए उनमें तादात्म्य नहीं है।[३] अनुमान प्रमाण से भी शब्द और अर्थ में तादात्म्य सिद्ध नहीं होता है, यथा—"जिनको विभिन्न इन्द्रियों के द्वारा जाना जाता है उनमें एकता नहीं रहती, जैसे—रूप चक्षुरिन्द्रिय से जाना जाता है और रस रसनेन्द्रिय से, इसलिए इनमें एकता नहीं है। इसी प्रकार शब्दाकाररहित नीलादिरूप और नीलादिरहित शब्द क्रमशः चक्षुरिन्द्रिय और कर्णेन्द्रिय के विषय होने से उनमें एकता नहीं है। अतः अर्थ और शब्द में एकत्व न होने से उनके तादात्म्य को शब्दानुविद्धत्व नहीं माना जा सकता। अनुमान प्रमाण से इस बात का निराकरण हो जाता है कि शब्द और अर्थ में तादात्म्य सम्बन्ध सम्भव नहीं है।[४]

शब्दाद्वैतवादी कहते हैं कि 'यह रूप है' इस प्रकार के शब्द रूप विशेषण से ही रूपादि अर्थ की प्रतीति होती है। इसी कारण से शब्द और रूपयुक्त पदार्थ में एकत्व माना जाता है। इसके प्रत्युत्तर में प्रभाचन्द्र आचार्य कहते हैं कि शब्दाद्वैतवादी का यह कथन भी ठीक नहीं है, क्योंकि यहां प्रश्न हो सकता है कि "यह रूप है" इस प्रकार के ज्ञान से वाग्रूपता को प्राप्त (तादात्म्ययुक्त) पदार्थ जाने जाते हैं अथवा यह ज्ञान भिन्न वाग्रूपता विशेषण से युक्त पदार्थों को जानता है ?[५] इनमें से किसी भी विकल्प को मानना निर्दोष नहीं है।

यदि यह माना जाए कि जब नेत्रजन्यज्ञान रूप को जानता है, तो उसी समय वाग्रूपता के पदार्थ जाने जाते हैं अर्थात् शब्दरूप पदार्थ है, ऐसा ज्ञान होता है—शब्दाद्वैतवादी का ऐसा मानना ठीक नहीं है। नेत्रजन्यज्ञान का विषय शब्द (वाग्रूपता) नहीं है। अतः उसमें उसकी प्रवृत्ति उसी प्रकार नहीं होती, जिस प्रकार अविषयी रस में चाक्षुष ज्ञान की प्रवृत्ति नहीं होती। यदि अपने विषय से भिन्न विषयों को चाक्षुष-ज्ञान जानने लगे, तो अन्य इन्द्रियों की कल्पना व्यर्थ हो जाएगी क्योंकि चक्षुरिन्द्रिय ही समस्त विषयों को जान लेगी।[६]

अब यदि माना जाय कि पदार्थ से भिन्न वाग्रूपता है और इस प्रकार के विशेषण से युक्त पदार्थ को चाक्षुषज्ञान जानता है, तो प्रभाचन्द्र कहते हैं कि उनका यह दूसरा पक्ष भी ठीक नहीं है, क्योंकि शुद्ध अर्थात् केवल रूप को जानने वाला और शब्द को न जानने वाला चाक्षुषज्ञान यह नहीं जान सकता कि यह पदार्थ शब्द रूप विशेषण वाला (भिन्न वाग्रूपता विशेषणयुक्त विषय के) है।[७] एक बात यह भी है कि जब तक विशेषण को न जाना जाय, तब तक विशेष्य को नहीं जाना जा सकता, जैसे—दण्ड को जाने बिना दण्डी को नहीं जाना जाता। इसी

---

१. 'ननु किमिदं शब्दानुविद्धत्वं नाम—अर्थस्याभिन्नदेशे प्रतिभासः तादात्म्यं वा ?', प्रभाचन्द्र : प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४०

२. तत्राद्यविकल्पोऽसमीचीनः, तद्रहितस्यैवार्थस्याध्यक्षे प्रतिभासनात्।', वही

३. (क) प्रभाचन्द्र : प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४०
   (ख) न्या० कु० चं०, १/५, पृ० १४४
   (ग) वादिदेव सूरि : स्या० र०, १/७, पृ० ६५

४. वही

५. '''रूपमिदमिति ज्ञानेन हि वाग्रूपता प्रतिपन्नाः पदार्थाः प्रतिपद्यन्ते भिन्नवाग्रूपता विशेषणविशिष्टा वा ?', प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४०

६. प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४०

७. 'द्वितीयपक्षेऽपि अभिधानेऽप्रवर्तमानं शुद्धरूपमात्रविषयं लोचनविज्ञानं कथं तद्विशिष्टतया स्वविषयमुद्योतयेत् ?', वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार जब शब्द रूप विशेषण को चाक्षुषज्ञान से नहीं जाना जाता, तो रूपयुक्त पदार्थ अर्थात् विशेष्य का ज्ञान भी नहीं हो सकता।[1] ऐसा मानना भी ठीक नहीं है कि दूसरे ज्ञान (श्रोत्रज्ञान) में शब्द विशेषणरूप से प्रतीत होने पर पदार्थ का विशेषण बन जाता है। यहां दोष यह है कि शब्द और अर्थ में भेद सिद्ध हो जाएगा;[2] यह पहले ही कहा जा चुका है कि जो-जो विभिन्न इन्द्रियों द्वारा जाने जाते हैं वे पृथक्-पृथक् होते हैं।

प्रभाचन्द्राचार्य कहते हैं कि शब्दाद्वैतवादी का यह कथन भी ठीक नहीं है कि शब्द से सम्बद्ध (मिले हुए) पदार्थ का स्मरण होने से उस पदार्थ को शब्द रूप मानते हैं। इस प्रकार शब्द से सम्बद्ध अर्थ का ज्ञान हो जायेगा। इस मान्यता में अन्योन्याश्रय नामक दोष आता है। तात्पर्य यह है कि शब्द से सम्बद्ध अर्थ की प्रतीति होने पर वचनसहित पदार्थ के स्मरण की सिद्धि होगी और वचनसहित पदार्थ का स्मरण होने पर शब्द रूप अर्थ के दर्शन की सिद्धि होगी।[3] इस प्रकार विचार करने पर शब्दानुविद्धता का स्वरूप ही सिद्ध नहीं होता।

अर्थ की अभिधानानुषक्तता क्या है ?

शब्दाद्वैतवादी से प्रभाचन्द्राचार्य एक प्रश्न यह भी करते हैं कि निम्नांकित विकल्पों में से पदार्थ की अभिधानानुषक्तता क्या है ?[4]—

१. अर्थज्ञान में शब्द का प्रतिभास होना। अथवा
२. अर्थ के देश (स्थान) में शब्द का वेदन (अनुभव) होना। अथवा
३. अर्थज्ञान के काल में शब्द का प्रतिभास (प्रतीत) होना।

१. अर्थज्ञान में शब्द का प्रतिभास होना अर्थ की अभिधानानुषक्तता नहीं है, क्योंकि नेत्रजन्यज्ञान में शब्द का प्रतिभास या प्रतीति नहीं होती।

२. इसी प्रकार अर्थ की अभिधानानुषक्तता का मतलब अर्थ के देश में शब्द का अनुभव होना नहीं है, क्योंकि शब्द का श्रोत्र-प्रदेश में अनुभव होता है और शब्द से सर्वथा विहीन रूपादि स्वरूप पदार्थ का अपने प्रदेश में अपने विज्ञान से अनुभव होता है।

३. इसी प्रकार अर्थज्ञान के काल में शब्द का प्रतिभास होना भी अर्थ की अभिधानानुषक्तता नहीं है, क्योंकि समान काल में शब्द और अर्थ के होने पर भी समान काल शब्द का लोचनज्ञान में प्रतिभास नहीं होता और भिन्न ज्ञान से जानने पर शब्द और पदार्थ भिन्न-भिन्न सिद्ध होते हैं।[5] इस प्रकार अर्थ की ही अभिधानानुषक्तता सिद्ध होती है।

एक बात यह भी है कि जो यह मानते हैं—प्रत्यक्ष-ज्ञान में अभिधानानुषक्त (शब्दसहित) पदार्थ ही प्रतिभासित होता है, उसके यहां बालक आदि को अर्थ के दर्शन की सिद्धि कैसे होगी, क्योंकि बालक मूक आदि शब्द को नहीं जानते।[6] इसी प्रकार मन में 'अश्व' का विचार करने वाले को गो-दर्शन कैसे होगा, क्योंकि उस समय उस व्यक्ति को 'गो' शब्द का उल्लेख नहीं होता। ऐसा मानना भी ठीक नहीं है कि एक साथ अश्व का विचार और गो-दर्शन दोनों हो रहे हैं। इस मान्यता में दोनों अर्थात् अश्व का विकल्प और गो-दर्शन असिद्ध हो जायेंगे, क्योंकि संसारी व्यक्ति में एक साथ दो शक्तियां नहीं हो सकतीं।[7]

वैखरी आदि का लक्षण असत्य है—शब्दाद्वैतवादी का यह कथन भी ठीक नहीं है कि ज्ञान में वाग्रूपता शाश्वती है। यदि उसका उल्लंघन किया जायेगा, तो ज्ञानरूप प्रकाशित नहीं हो सकेगा। इस कथन के ठीक न होने का कारण यह है कि चाक्षुष-प्रत्यक्ष में शब्द (वाग्रूपता) का संस्पर्श (संसर्ग) नहीं होता। श्रोत्र से ग्रहण करने योग्य वैखरी (वचनात्मक) वाग्रूपता का भी संस्पर्श चाक्षुष-प्रत्यक्ष नहीं करता, क्योंकि वैखरी चाक्षुष-प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। इसी प्रकार अन्तर्जल्पयुक्त मध्यमा वाक् को चाक्षुष-प्रत्यक्ष संस्पर्श नहीं करता, फिर भी (उसके बिना भी) शुद्ध रूपादि का ज्ञान होता है। जिससे समस्त वर्णादि विभाग का संहार हो गया है, ऐसी पश्यन्ती (अर्थदर्शनरूपा) और आत्मदर्शन-रूपा सूक्ष्मा वाग्रूपता वाणीरूपा हो ही नहीं सकती। शब्दाद्वैतवाद में पश्यन्ती और सूक्ष्मा को अर्थ एवं आत्मा का साक्षात् (दर्शन) करने वाली माना है। जब उन दोनों में शब्द नहीं हैं, तो वे वाणी कैसे कहलायेंगी, क्योंकि वाणी वर्ण, पद और वाक्यरूपा होती है।[8] अतः वागादि

१. प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४०
२. 'तथा सति अनयोर्भेदसिद्धिः।', वही
३. 'अन्योन्याश्रयानुषंगात्……।', वही, १/३, पृ० ४१
४. वही, १/३, पृ० ४१
५. वही
६. 'कथं चैवंवादिनो बालकादेरर्थदर्शनसिद्धिः, तन्नाभिधाना प्रतीते……।', वही
७. वही, १/३, पृ० ४१
८. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का लक्षण ठीक नहीं है।

शब्दब्रह्म में वैखरी आदि अवस्थायें विरुद्ध हैं—आचार्य विद्यानन्द कहते हैं कि नित्य, निरंश और अखण्ड शब्दब्रह्म में वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और सूक्ष्मा ये चार भेद नहीं हो सकते। किसी सांश पदार्थ में ही भेद हो सकता है।[1] वे शब्दाद्वैतवादी से एक प्रश्न यह भी करते हैं कि क्या वैखरी आदि चार अवस्थायें सत्य हैं ? सत्य मानने पर उनके सिद्धान्त विरोधी सिद्ध होते हैं, क्योंकि शब्दब्रह्म की तरह वैखरी आदि को सत्य मान लिया गया है, जिससे द्वैत की सिद्धि होती है।[2]

वैखरी आदि अविद्यास्वरूप नहीं हैं—शब्दाद्वैतवादी का यह कथन भी सत्य नहीं है कि एकमात्र शब्दब्रह्म सत्य है और वैखरी आदि चार अवस्थायें अविद्यास्वरूप होने से असत्य हैं। इस कथन के ठीक न होने का कारण यह है कि निरंश शब्दब्रह्म विद्यास्वरूप सिद्ध है। इसलिए उसकी अवस्थायें भी अविद्यास्वरूप न होकर विद्यास्वरूप ही होंगी। इस प्रकार वैखरी आदि को अविद्यास्वरूप मानना तर्कसंगत नहीं है।[3]

अर्थ शब्द से अन्वित है—यह कैसे जाना जाता है ?—प्रभाचन्द्राचार्य न्यायकुमुदचन्द्र में शब्दाद्वैतवादी से कहते हैं कि शब्द और अर्थ का सम्बन्ध होने पर अर्थ शब्द से अन्वित है—यह किसी प्रमाण से जाना जाता है या नहीं ?[4] यह तो माना नहीं जा सकता है कि किसी प्रमाण से नहीं जाना जाता है, अन्यथा अतिप्रसंग नामक दोष आयेगा अर्थात् सबके कथन की पुष्टि बिना प्रमाण के होने लगेगी। दूसरी बात यह है कि "जो जिससे असम्बद्ध होता है, वह उससे वास्तव में अन्वित नहीं होता, जैसे—हिमालय और विन्ध्याचल पर्वत असम्बद्ध हैं, इसलिए हिमालय से विन्ध्याचल अन्वित नहीं है। इसी प्रकार अर्थ से शब्द भी असम्बद्ध है अर्थात् अर्थ शब्द से अन्वित नहीं है।"[5] इस अनुमान से विरोध आता है।

शब्द और अर्थ में कौन-सा सम्बन्ध है ?—अब यदि यह मान लिया जाय कि शब्द और अर्थ में परस्पर सम्बन्ध है, तो शब्दाद्वैत-वादियों को यह भी बतलाना चाहिए कि उनमें कौन-सा सम्बन्ध है ? उनमें निम्नांकित सम्बन्ध ही हो सकते हैं[6] :

(क) क्या शब्द और अर्थ में संयोग सम्बन्ध है ? (ख) क्या उनमें तादात्म्य सम्बन्ध है ?

(ग) क्या विशेषणीभाव सम्बन्ध है ? (घ) क्या वाच्य-वाचक भाव सम्बन्ध है ?

शब्द-अर्थ में संयोग सम्बन्ध नहीं है—शब्द और अर्थ दोनों मलय पर्वत और हिमाचल की तरह विभिन्न देश में रहते हैं अर्थात् शब्द श्रोत्र-प्रदेश में और अर्थ सामने अपने देश में रहता है, इसलिए उनमें उसी प्रकार से संयोग सम्बन्ध नहीं हो सकता, जैसे—मलय और हिमाचल में संयोग सम्बन्ध नहीं है। भिन्न देश में रहने पर भी यदि शब्द और अर्थ में संयोग सम्बन्ध माना जाय, तो अद्वैत सिद्ध नहीं हो सकता। दूसरी बात यह है कि शब्द और अर्थ दोनों विभिन्न द्रव्य हो जायेंगे, क्योंकि संयोग सम्बन्ध दो पदार्थों में होता है।[7]

शब्द-अर्थ में तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है—शब्द और अर्थ में तादात्म्य सम्बन्ध मानना भी ठीक नहीं है, क्योंकि दोनों विभिन्न इन्द्रियों के द्वारा जाने जाते हैं। वादिदेव कहते हैं कि शब्द-अर्थ में तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण से उसका निरानरण हो जाता है।[8] चाक्षुष-प्रत्यक्ष पट, कुट आदि पदार्थों को शब्द से भिन्न जानता है। इसी प्रकार श्रोत्र-प्रत्यक्ष भी कुटादि से भिन्न शब्द को जानता है।

अनुमान भी शब्द-अर्थ के तादात्म्य सम्बन्ध का विरोधी है—प्रभाचन्द्र और वादिदेव कहते हैं कि शब्द और अर्थ में तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि स्तम्भ (खम्बा) और कुम्भ की भांति शब्द और अर्थ भिन्न देश, भिन्न काल और भिन्न आकार वाले हैं।[9] इन दोनों का भिन्न होना असिद्ध नहीं है, क्योंकि शब्द कर्णकुहर में और अर्थ भूतल में उपलब्ध होता है। यदि दोनों अभिन्न देश में रहते, तो प्रमाता की शब्द के उपलब्ध करने में प्रवृत्ति होनी चाहिए, अर्थ में नहीं। किन्तु, अर्थ में ही उसकी प्रवृत्ति होती है, शब्द में नहीं। शब्द से पहले पदार्थ रहता है, इसलिए वे भिन्न काल वाले भी हैं। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न आकार वाले भी शब्द-अर्थ सिद्ध हैं।[10]

एक बात यह भी है कि यदि अर्थ शब्दात्मक है तो शब्द की प्रतीति होने पर संकेत न जानने वाले को भी अर्थ में सन्देह नहीं

---

१. 'निरंशशब्दब्रह्मणि तथा वक्तुमशक्तेः।', त० श्लो० वा०, १/३/२०, पृ० २४०

२. 'तस्यावस्थानां चतसृणां सत्यत्वेऽद्वतविरोधात्', वही

३. 'शब्दब्रह्मणोनंशस्य विद्यात्वसिद्धौ तदवस्थानामविद्यात्वाप्रसिद्धेः।', वही

४. '···शब्देनान्वितत्वमर्थस्य कुतश्चित् प्रमाणात् प्रतीयेत् असति वा ?', प्रभाचन्द्र : न्या० कु० चं०, १/५, पृ० १४४

५. वही

६. 'अथ सति सम्बन्धे; ननु कोऽयं तस्य तेन सम्बन्धः संयोगः, तादात्म्यम्, विशेषणीभावः वाच्यवाचकभावो वा ?', प्रभाचन्द्र : न्या० कु० चं०, पृ० १४४

७. 'तत्सम्बन्धाभ्युपगमे च अनयोर्द्रव्यान्तरत्वसिद्धिप्रसंगात् कथं तदद्वैतसिद्धिः स्यात् ?', वही

८. द्रष्टव्य : स्या० र०, १/७, पृ० ६४

९. (क) 'नास्ति शब्दार्थयोस्तादात्म्ये विभिन्नदेश-काल-आकारत्वात्।', प्रभाचन्द्र : न्या० कु० चं०, पृ० १४४

(ख) वादिदेव : स्या० र०, १/७, पृ० ६४

१०. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होना चाहिए। इसके अतिरिक्त अग्नि, पाषाण आदि शब्द सुनते ही कान में दाह, अभिघात आदि होना चाहिए।[1] अभयदेव सूरि और भद्रबाहु स्वामी ने भी यही कहा है।[2] लेकिन ऐसा नहीं होता। सिद्ध है कि शब्द और अर्थ में तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है। एक प्रश्न के उत्तर में प्रभाचन्द्राचार्य कहते हैं कि शब्द और अर्थ में तादात्म्य सम्बन्ध के अभाव में भी अर्थ की प्रतीति शब्दों में रहने वाली संकेत और स्वाभाविक शक्ति में उसी प्रकार होती है, जैसे काष्ठादि में भोजन पकाने की शक्ति होती है।[3] श्री वादिदेव सूरि ने भी कहा है "स्वाभाविक शक्ति तथा संकेत से अर्थ के ज्ञान करने को शब्द कहते हैं।"[4] इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध है कि शब्द और अर्थ में तादात्म्य सम्बन्ध भी नहीं है।

शब्द-अर्थ में विशेषणीभाव सम्बन्ध भी नहीं है—शब्द और अर्थ में विशेषणीभाव भी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि विशेषण-विशेष्य-भाव दो सम्बद्ध पदार्थों में ही होता है, जैसे—भूतल में घटाभाव। सम्बन्धरहित दो पदार्थों में विशेषणीभाव उसी प्रकार नहीं होता, जैसे सह्य और विन्ध्याचल में नहीं है। इसी प्रकार शब्द और अर्थ के असम्बद्ध होने से उनमें विशेषणीभाव सम्बन्ध भी नहीं है।[5]

वाच्य-वाचक सम्बन्ध मानने पर द्वैत की सिद्धि—शब्द और अर्थ में वाच्य-वाचक-भाव मानना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने से वाच्य-पदार्थ और वाचक-शब्द इन दोनों में भेद मानना होगा और ऐसा मानने पर अद्वैत का अभाव और द्वैत की सिद्धि होती है। इस प्रकार विचार करने पर शब्द और अर्थ में कोई सम्बन्ध ही सिद्ध नहीं होता। अतः शब्दाद्वैतवादियों का यह सिद्धान्त ठीक नहीं है कि अर्थ शब्द से अन्वित है।[6]

शब्दाद्वैतवादी का यह कथन भी ठीक नहीं है कि "प्रतीति से ज्ञान में शब्दान्वितत्व की कल्पना की जाती है और ज्ञान के शब्दान्वित सिद्ध होने पर अन्यत्र भी कल्पना कर ली जाती है कि संसार के सभी पदार्थ शब्दान्वित हैं।" शब्दाद्वैतवादी का यह कथन ठीक न होने का कारण यह है कि कल्पना के आधार पर किसी बात की सिद्धि नहीं हो सकती।[7] दूसरी बात यह है कि ज्ञान और शब्द का द्वैत मानना पड़ेगा।[8] इसलिए 'न सोऽस्ति प्रत्ययोलोके' इत्यादि कथन ठीक नहीं है। एक बात यह भी है कि चाक्षुष-प्रत्यक्ष में शब्द-संस्पर्श के अभाव में भी अपने अर्थ का प्रकाशक होने से ज्ञान सविकल्प सिद्ध होता है।

शब्द से भिन्न पदार्थ नहीं—ऐसा कहना भी असंगत एवं दोषयुक्त है

शब्द से भिन्न (व्यतिरिच्य) पदार्थ नहीं है—शब्दाद्वैतवादी का यह कथन भी ठीक नहीं है; क्योंकि ऐसा कहना प्रत्यक्ष प्रमाण से विरुद्ध है। हम प्रत्यक्ष से अनुभव करते हैं कि शब्द के देश से भिन्न स्थान में अर्थ रहता है।[9] लोचनादिज्ञान के द्वारा शब्द का ज्ञान होने पर भी अर्थ की प्रतीति होती है।[10] इस प्रकार 'तत्प्रतीतावेव प्रतीयमानत्वात्' इस अनुमान में प्रतीयमानता हेतु असिद्ध है। यदि शब्द के प्रतीत होने पर ही अर्थ की प्रतीति होती हो, तो बधिर को चक्षु आदि प्रत्यक्ष के द्वारा रूप आदि की प्रतीति नहीं होनी चाहिए—यह पहले ही कहा जा चुका है। अतः शब्द से पदार्थ भिन्न है—यह सिद्ध है।

इस प्रकार शब्दाद्वैत का परिशीलन करने से सिद्ध होता है कि इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए शब्दाद्वैतवादियों ने जो तर्क दिये हैं वे परीक्षा की कसौटी पर सही सिद्ध नहीं होते। अतः शब्दाद्वैतवादियों का मत युक्तियुक्त नहीं है। स्याद्वाद मत में शब्द के अतिरिक्त अन्य पदार्थों की सत्ता सिद्ध की गई है। जैन-दर्शन में द्रव्यवाक् और भाववाक् के भेद से वचन दो प्रकार के हैं। द्रव्यवाक् दो प्रकार की होती है—द्रव्य और पर्याय। श्रोत्रेन्द्रिय से जो वाणी ग्रहण की जाती है, वह पर्यायरूपवाक् है; उसी को शब्दाद्वैतवादियों ने वैखरी और मध्यमा कहा है। इस प्रकार सिद्ध है कि वैखरी और मध्यमा रूप शब्द पुद्गल-द्रव्य की पर्याय हैं। द्रव्यस्वरूप वाणी पुद्गल-द्रव्य है, जिसका किसी ज्ञान में अनुगम होने वाला है। भाववाक् जैन दर्शन में विकल्पज्ञान और द्रव्यवाक् का कारण है। यह भाववाक् ही शब्दाद्वैतवाद में पश्यन्ती कही गई है। इस भाव-वाणी के बिना जीव बोल नहीं सकते।

१. वादिदेव : स्या० र०, १/७, पृ० ६४; और भी देखें : प्र० क० मा०, १/३, पृ० ४६

२. (क) 'शब्दार्थयोश्च तादात्म्ये क्षुराग्निमोदकादिशब्दोच्चारणे आस्यपाटनदहनपूरणादि प्रसक्तिः।', अभयदेव सूरि : सं० त० प्र० टीका, पृ० ३८६

(ख) 'अभिहाणं अभिहेयाउ होइ भिण्णं अभिण्णं च।
सुरअग्णि मोयणुच्चारणम्मि जम्हा वयणसवणाणं॥', स्या० मं०, पृ० ११८

३. 'ननु···तदभावेऽप्यस्याः संकेतसामार्थ्यादुपपद्यमानत्वात्।···शब्दानां सहजयोग्यतायुक्तानामर्थप्रतीतिप्रसाधकत्वम् काष्ठादीनां पाकप्रसाधकत्ववत्।', प्रभाचन्द्र : न्या० कु० चं०, पृ० १४४

४. प्रमाणनयतत्वालोकालंकार

५. 'नाऽपि विशेषणीभावः, सम्बन्धान्तरेण।···सह्यविन्ध्यादिवत् तद्भावस्यानुपपत्तेः।', न्या० कु० च०, १/५, पृ० १४४

६. 'तदेवं शब्दार्थयोः अद्वैताविरोधिनः सम्बन्धस्य कस्यचिदपि विचार्यमाणस्यानुपपत्तेः न शब्देनान्वितत्वमर्थस्य घटते।', प्रभाचन्द्र : न्या० कु०च०, १/५, पृ० १४५

७. वही

८. 'शब्दाद्वैतवादी हि भवान् न च तत्र शब्दो बोधश्चेति द्वयमस्ति।', वादिदेव सूरि : स्या० र०, पृ० ९२

९. '···तत्र पक्षस्य प्रत्यक्षबाधा···।', न्या० कु० च०, १/५, पृ० १४५

१०. '···इति हेतुश्चासिद्धः, लोचनादिज्ञानेन शब्दाऽप्रतीतावपि अर्थस्य प्रतीयमानत्वात्।', वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org